शोधादर्श

83

भगवान महावीर के जन्म स्थान वैशाली में निर्मित मन्दिर

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

आद्य सम्पादक	:	(स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
पूर्व प्रधान सम्पादक	:	(स्व.) श्री अजित प्रसाद जैन
पूर्व सम्पादक	:	(स्व.) श्री रमा कान्त जैन
मार्गदर्शक	:	डॉ. शशि कान्त
सम्पादक	:	श्री नलिन कान्त जैन
सह–सम्पादक	:	श्री सन्दीप कान्त जैन
	:	श्री अंशु जैन 'अमर'
	:	सौ. डॉ. अलका अग्रवाल

प्रकाशक

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004, टेलीफोन सं. (0522) 2451375

ई–मेल : shodhadarsh@gmail.com

णाणं णरस्स सारं – सच्चं लोयम्मि सारभूयं

ज्ञान ही मनुष्य जीवन का सार है

सत्य ही लोक में सारभूत तत्त्व है

शोधादर्श - 83

वीर निर्वाण संवत् 2542 जून 2016 ई.

विषय क्रम

1	सम्पादकीय	श्री नलिन कान्त जैन	4
2	गुरुगुण–कीर्तन कविवर श्री बुधजन	श्री रमा कान्त जैन	5–11
3	आधुनिक युग–पूर्व हिन्दी के विकास में जैनों का योगदान	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	12–17
4	भारतीय साहित्य और जैन साहित्यकार	डॉ. केसरी नारायण शुक्ल	18–24
5	प्राकृत का अभिलेखीय साहित्य	डॉ. शशि कान्त	25–28
6	क्या **Kalanos** (कल्याण मुनि ?) दिगम्बर जैन मुनि थे ?	श्री अजित प्रसाद जैन	29–34
7	**The Udayana Vihāra**	प्रो. डी.सी. सरकार	35–37
8	विश्वशांति में अनेकान्त का योग	डॉ. (श्रीमती) अनीता जैन	38–42
9	जीवन के मूल्य	श्रीमती शेफाली मित्तल	43–44

10	श्री महावीराष्टक स्तोत्र (हिन्दी पद्यानुवाद)	श्री निशान्त जैन 'निश्चल'	45–46
11	परम अहिंसा धर्म (पद्य)	श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'	46
12	ऋषभ वंदना (पद्य)	श्रीमती त्रिशला जैन शास्त्री	47
13	पराई पीर (पद्य)	श्री अमरनाथ	48
14	हृदयोद्‌गार (पद्य)	श्रीमती सरिता अग्रवाल	49
15	"नमो" तुम चलते चलो (पद्य)	श्री राजीव कान्त जैन	50
16	श्री सुरेश जी 'सरल'	श्री सुरेश जैन	51–53
17	संस्मरण–विनयांजलि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	श्री मगनलाल जैन	54–55
18	तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र. प्रतिवेदन (2015–16)	श्री नलिन कान्त जैन	56–60
19	समिति के सदस्यों का चिरवियोग : श्री कैलाश चन्द जैन, श्री धनेन्द्र कुमार जैन, श्री महेन्द्र प्रसाद जैन	श्री नलिन कान्त जैन	61
20	साहित्य सत्कार मूलआम्नाय निबन्धावली ; पंचामृत एवं स्त्री अभिषेक आगम सम्मत नहीं; महावीर का अन्तर्बोध; भगवान ऋषभदेव काव्य शतक एवं भजन संग्रह; निर्दोष श्रमणोपचार; खालसा नाटक; जिनांजलि; ब्रज कुमदेश; आत्मकथा; जैनागमों में संलेखना, संथारा; अभिनन्दन ग्रन्थ	डॉ. शशि कान्त	62–67
21	आभार		68
22	अभिनन्दन		68–69
23	शोक संवेदन		69
24	पाठकों के पत्र डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव, डॉ. उषा माथुर, श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध', श्री बी.डी. अग्रवाल, श्री महेश नारायण सक्सेना		70–71

आवश्यक सूचना

वार्षिक शुल्क रु. 60/–(साठ रुपये), **'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.,ज्योति निकुंज,चारबाग, लखनऊ–226004'**, को 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति' के नाम लखनऊ में देय चेक अथवा ड्राफ्ट द्वारा भेजने का अनुग्रह करें। मनीआर्डर से भेजने पर उसकी सूचना एक पोस्टकार्ड पर भी अपने पूरे नाम व पते के साथ अवश्य भेजें। विदेशों के लिए पत्रिका का वार्षिक शुल्क 25 डालर है।

शोधादर्श षड्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक जून–अन्त और दिसम्बर–अन्त में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहियें। यथासम्भव लेख 3–4 टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। लेख सामान्यतया हिन्दी में होने चाहिएं, परन्तु अंग्रेजी में भी भेजे जा सकते हैं। लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को **ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004,** के पते पर भेजे जायें।

प्रत्यावर्तन में पत्रिका की केवल एक प्रति सम्पादक को उपरोक्त पते पर भेजी जाये।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेख में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

✧✧✧

– सम्पादक

सम्पादकीय

वर्तमान परिस्थितियों में जैन धर्म के अनुयायिओं को अपने आपसी पंथ या आमनाय विषयक भेद–भाव से विरत होना आवश्यक है। जैन के नाम से सम्बोधित किये जाने वाले सभी समुदायों को परस्पर संवाद द्वारा एक साथ आना आवश्यक है। लोकतंत्र में संगठित जन शक्ति का ही महत्व होता है। जैन धर्मानुयायी विशेष अल्प संख्यक वर्ग में आते हैं अतः उन्हें अपने वर्चस्व की रक्षा के लिए एक साथ होना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में कुछ प्रयास किये भी जा रहे हैं। सभी विद्वान मनीषियों और धर्म गुरुओं से यह सविनय अनुरोध है कि वे जनमानस में इस सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रेरित करें और जागरुकता प्रतिपादित करें।

अंहिसा इण्टरनेशनल द्वारा **शोधादर्श** को सम्मानित किये जाने के उपलक्ष में जिन सहृदय मित्रों ने अपनी शुभकामना उसके लिए सूचित की है इसके लिए हम उनके प्रति आभारी हैं।

जैन साहित्य, इतिहास और संस्कृति से सम्बन्धित विषयों पर तथा सम–सामयिक सामाजिक समस्याओं पर लेख/रचनाएं आमंत्रित हैं।

हमारा प्रयास रहता है कि प्रत्येक अंक में कोई विषय विशिष्ट रहे। इस अंक में भारत के साहित्यिक क्षेत्र में जैन रचनाकारों का विशेष रूप से स्मरण किया गया है।

भगवान महावीर के प्रति श्रद्धांजलि स्वरूप उनके जन्म–स्थान पर वैशाली में निर्मित मंदिर का चित्र मुख पृष्ठ पर दिया जा रहा है।

मैं अपने सम्पादक मण्डल के सदस्यों को और तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के अध्यक्ष, पदाधिकारियों एवं सदस्यों को उनके सहयोग के लिए धन्यवाद देता हूं।

नलिन कान्त जैन
सम्पादक

हिन्दी भारती के वरेण्य साहित्यकार कविवर श्री बुधजन

— श्री रमा कान्त जैन

बाबा, मैं न काहूका, कोई नहीं मेरा रे।।
सुर–नर–नारक–तिर्यक गति में, मोको करमन घेरा रे।।1
माता–पिता–सुत तियकुल परिजन, मोह–गहल उरझेरा रे।
तन–धन–वसन–भवन जड़ न्यारे, हूं चिन्मूरति न्यारा रे।।2
मुझ विभाव जड़ कर्म रचत है, करमन हमको फेरा रे।
विभाव–चक तजि धारि सुभावा, निज आनन्द–घन हेरा रे।।3
खरच खेद नहिं अनुभव करते, निरखि चिदानन्द तेरा रे।
जप–तप व्रत श्रुतसार यही है, 'बुधजन' कर न अबेरा रे।।4

राग–आसावरी में निबद्ध उपर्युक्त आध्यात्मिक पद कवि बुधजन का है। इनका मूल नाम बिरधीचन्द्र या भदीचन्द्र बताया जाता है। बुधजन कदाचित् इनका कवि नाम था। ये जयपुर के रहने वाले, बज गोत्रीय खण्डेलवाल जैन थे। इनके जीवन–वृत्त के विषय में विशेष कुछ जानकारी नहीं है सिवाय इसके कि ये एक गृहस्थ धर्मात्मा पंडित और सुकवि थे। श्री भदीचन्द्र (बिरधीचन्द्र) गुमानपंथी आम्नाय के थे। इनके पिता का नाम श्री निहालचन्द्र था। ये उनके तीसरे पुत्र थे, इनके पांच भाई और थे। इन्होंने पंडित मांगीलाल जी के पास विद्याध्ययन किया था। ये दीवान अमरचन्द जी के मुख्य मुनीम थे। इनका जीवन काल संवत् 1830–1895 अर्थात् ई. सन् 1773–1838 था।

रचनायें : छहढाला

इन्हाने संवत् 1859 (ईस्वी सन् 1802) की वैशाख शुक्ल तृतीया को अपनी **'षट् ढाल'** अर्थात् **'छहढाला'** नाम से प्रसिद्ध आध्यात्मिक हिन्दी रचना पूर्ण की थी। उक्त **'छहढाला'** सन् 1910 ई. में अमृतसर के उम्मेदसिंह मुसद्दीलाल जैनी द्वारा प्रकाशित **'अध्यात्म संग्रह'** में पृष्ठ 91–108 पर संकलित है। तद्नन्तर संवत् 1871 (ईस्वी सन् 1814) में इनके द्वारा **'तत्त्वार्थ बोध'** नामक आध्यात्मिक कृति रची बताई जाती है।

बुधजन सतसई

तदुपरान्त कवि ने विक्रम संवत् 1879 (ईस्वी सन् 1822) की ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी को ढूंढार प्रदेश (वर्तमान राजस्थान राज्य) के जैपुर (जयपुर)

नगर में नृप जयसिंह के राजकाल में, हिन्दी में **बिहारी सतसई, वृन्द सतसई, मतिराम सतसई, विकम सतसई, वीर सतसई, श्रृंगार सतसई** आदि की परम्परा में **'बुधजन सतसई'** पूर्ण की। इस सतसई में देवानुराग शतक प्रकरण में देवभक्ति के 100 दोहे हैं, सुभाषित नीति के अन्तर्गत (एक संस्करण में) 200, (एक अन्य संस्करण में 199), दोहे हैं, उपदेशाधिकार के अन्तर्गत 122 दोहों में नीति सुभाषित है, 15 में विद्या–प्रशंसा है, 14 दोहे मित्रता और संगति पर, 8 दोहे जुआ–निषेध, 6 दोहे मांस–निषेध, 6 दोहे मद्य–निषेध व 6 दोहे वेश्या–निषेध पर हैं तथा 7 दोहों में चोरी–निन्दा है व 9 दोहों में परस्त्रीसंग निषेध किया गया है। तद्नन्तर विराग भावना के अन्तर्गत वैराग्य जागृत करने वाले 115 दोहे हैं। अन्त में 7 दोहों में कवि–प्रशस्ति दी हुई है। इस सतसई का एक संस्करण ईस्वी सन् 1910 में पं. नाथूराम प्रेमी ने संशोधित कर श्री जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई से प्रकाशित कराया था। (इसमें सुभाषित नीति के 200 दोहे मुद्रित हैं जबकि कवि बुधजन के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर आधारित शोध ग्रन्थ **'बुधजन–सतसई एक अध्ययन'** में उक्त प्रकरण के अन्तर्गत 199 दोहे मुद्रित हैं।)

उक्त सतसई के अन्त में दी गई कवि–प्रशस्ति भी बुधजन के व्यक्तिगत जीवन का परिचय देने की दिशा में मौन है। तदपि चूंकि सतसई के अंतिम दोहे– **ना काहू की प्रेरना, ना काहू की आस।**
अपनी मति तीखी करन, वरन्यो वरन विलास।
के अनुसार उक्त रचना स्वान्तः सुखाय की गई थी, इससे यह अनुमान किया जाता है कि आजीविका के लिए उनका कोई अन्य साधन रहा होगा। पं. नाथूलाल शास्त्री ने जयपुर में उनके द्वारा बनवाया गया बुधचन्द जी का मंदिर होना सूचित किया है। (यह मंदिर टिक्की वालों का रास्ता, किशनपुर बाजार में स्थित है; बिम्ब प्रतिष्ठा सम्वत् 1864 अर्थात् ई. सन् 1807 में हुई थी।) वे एक समृद्ध धर्मात्मा गृहस्थ व एक सरल–सीधे व्यक्ति थे और निन्दनीय कार्यों से दूर रहते थे। उनकी कृति का सार स्वयं उनके शब्दों में निम्नवत् है –

भूख सहौ दारिद सहौ, सहौ लोक अपकार।
निंद काम तुम मति करौ, यहै ग्रन्थ कौ सार।।

अन्य रचनायें

उक्त सतसई के पश्चात् संवत् 1891 (ईस्वी सन् 1834) में बुधजन ने आचार्य कुन्दकुन्द के **'पंचास्तिकाय'** ग्रन्थ जो मूलतः प्राकृत भाषा में है

और जिस पार आचार्यों द्वारा संस्कृत में टीकाएं रची गई हैं, का हिन्दी पद्यानुवाद पूर्ण किया, ऐसा बताया जाता है। संवत् 1892 (ईस्वी सन् 1835) में उनकी स्फुट रचनाओं और मुक्तक पदों का **'बुधजन विलास'** नाम से संकलन हुआ। डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल ने इसी वर्ष में **'संबोध पंचासिका'** तथा संवत् 1895 (ईस्वी सन् 1838) में **'योगसार भाषा'** की रचना बुधजन द्वारा किये जाने का उल्लेख किया है। डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन ने इनकी कृतियों के अन्तर्गत **'इष्टछत्तीसी'** और हिन्दी पद्य में रचित **'वर्द्धमान पुराण'** का भी उल्लेख किया है तथा पं. नाथूलाल शास्त्री ने इनके अतिरिक्त **'बन्दनाज खड़ी'**, **'दोष बावनी'** और **'पद संग्रह'** को भी इनकी कृति बताया है।

भाव व्यंजना

बुधजन जिनेन्द्र भगवान के सच्चे उपासक थे, उनमें सम्प्रदाय–निरपेक्षता (सेक्युलरिज्म) की भावना थी। कदाचित् यही कारण है कि निज–पर–हितकार अर्थात् स्व–पर–कल्याण की भावना से रची गई अपनी सतसई के देवानुरागशतक में भी अपने इष्टदेव का नामोल्लेख किये बिना उनका गुणगान किया है। बुधजन काफी विनयवान थे। भक्त कवि सूरदास के पद–'मेरे औगुन चित्त न धरों' की भांति ही उन्होंने भी अपने आराध्य से मांग की है –

मेरे औगुन जिन गिनौ, मैं औगुन को धाम।
पतित उधारक आप हौ, करौ पतित को काम।।

और शिकायत की है –

सुनी नहीं अजौं कहूं, विपति रही है घेर।
औरनि के कारज सरे, ढील कहां मो बेर।।

फिर अपने देव की कठिनाई को समझते हुए विनती की है –

हारि गये हौ नाथ तुम, अधम अनेक उबारि।
धीरै धीरै सहज में, लीजै मोहि उबारि।।

और यह याचना की है –

और नाहिं जांचू प्रभु ये वर दीजै मोहि।
जौलों सिव पहुंचूं नहीं, तौलौ सेऊं तोहि।।

वीतराग जिनेन्द्र के प्रति यह दास्य–भक्ति यद्यपि कुछ विचित्र सी लगती है, किन्तु उनकी यह विनती–याचना तुलसी की **विनयपत्रिका**, सूर के **विनयपद** तथा अन्य पूर्ववर्ती एवं समकालीन भक्त कवियों द्वारा अपने आराध्य के प्रति किये गये भक्तिगानों की श्रृंखला में की गई भावाभिव्यक्ति

है। निम्नलिखित दोहे से विदित होता है कि वे हृदय से देवता का स्मरण करने पर विश्वास रखते थे न कि लकड़ी, धातु तथा पत्थर से निर्मित मूर्ति में उसका निवास होने पर –

दारू धात पखान में, नाहिं विराजै देव।
दैवभाव भावें भला, फलै लाभ स्वयमेव।।

सतसई के 'सुभाषित खण्ड' और 'उपदेशाधिकार प्रकरण' में कवि ने लोक–मर्यादा के संरक्षण हेतु अनेक हितकारी, नीति की बातें बताई हैं। कबीर, तुलसी, रहीम, वृन्द और बिहारी के नीति–विषयक दोहों की परम्परा में रचित इस खण्ड के दोहों पर संस्कृत के सुभाषितों की भी छाप है। किन्तु इन दोहों में कवि की अपनी मौलिकता भी स्पष्ट है। पारिभाषिक जैन शब्दों के प्रयोग द्वारा कवि ने सम्यक्त्व की महिमा, मिथ्यात्व की हानि एवं चारित्र की महत्ता प्रतिपादित की है। साथ ही लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रचुर प्रयोग किया है। एक–एक दोहे में जीवन को प्रगतिशील बनाने वाले अमूल्य सन्देश सरल भाषा में भरे हुए हैं, जिनके पठन और मनन से हृदय पूत (पवित्र) भावनाओं से भर जाता है। उपर्युक्त दो खण्डों की कुछ बानगी निम्नलिखित दोहों में देखी जा सकती है –

एक चरन हूं नित पढ़े, तौ काटै अज्ञान।
पनिहारी की नेज सौं, सहज कटै पाषान।।

पर उपदेश करन निपुन, तै तौ लखै अनेक।
करै समिक बोलै समिक, तै हजार में एक।।

पर का मन मैला निरखि, मन बन जाता सेर।
जब मन मांगै आन तैं, तब मन का ह्वै सेर।।

गति गति में मरते फिरै, मनतैं गया न फेर।
फेर मिटै तैं मनतना, मरै न दूजी बेर।।

जिनका मन आतुर भया, तै भूपति नहिं रंक।
जिनका मन संतोष मैं, तै नर इन्द्र निसंक।।

सींग पूंछ बिन बैल हैं, मानुष बिना विवेक।
भख्य अभख समझै नहीं, भगिनी भामिनी एक।।

गनिका, जोगी, भूमिपति, वानर अहि मंजार।
इनतें राखै मित्रता, परै प्रान उरझार।।

अधिक सरलता सुखद नहिं, देखो विपिन निहार।
सीधे बिरवा कटि गये, बांके खरे हजार।।

सतसई के विरागभावना प्रकरण में बुधजन ने संसार की असारता का रोचक और सजीव चित्रण किया है और कटु सत्य को प्रकट किया है। इस प्रसंग में निम्नलिखित दोहे द्रष्टव्य हैं –

केश पलटि पलट्या वपु, ना पलटी मन बांक।
भुंजै न जरती झूंपरी, तै जर चुके निसांक।।
को है सुत को है तिया, का को धन परिवार।
आके मिले सराय में, बिछुरैंगे निरधार।।
परी रहैगी संपदा, धरी रहैगी काय।
छलबल करि क्यों हु न बचै, काल झपट लै जाय।।
निसि सूते संपतिसहित, प्रात हो गये रंक।
सदा रहै नहिं एकसी, निभैं न काकी बंक।।
देहधारी बचता नहीं, सोच न करिये भ्रात।
तन तौ तजिगे राम से, रावन की कहा बात।।

भाषा

हिन्दी–ब्रजभाषा में रचित इस सतसई में, जैसा कि ऊपर उद्धृत दोहों से भी प्रकट है, ढूंढारी बोली का प्रभाव है जो कि कवि के उस प्रदेश के होने के कारण स्वाभाविक है। अपभ्रंश और उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी कवि ने किया है –

तुछ स्यानप अति गाफिली, खोई आयु असार।
अब तौ गाफिल मत रहौ, नीड़ा आस करार।।

उपर्युक्त दोहे में उर्दू के 'गाफिली' और 'गाफिल' शब्दों का प्रयोग तथा निम्नलिखित दोहे में 'गुडि' शब्द का प्रयोग ध्यातव्य है –

गुडि कहना गुडि पूछना, दैना लैना रीति।
खाना आप खवावना, षटविधि बधि है प्रीति।।

उक्त दोहे का भावार्थ है कि प्रीति अच्छी बात कहने, अच्छी बात पूछने, न्यायपूर्वक देने–लेने और खुद खाने व दूसरों को खिलाने इन छह विधियों (उपायों) से बंधी है। हमें नहीं ज्ञात है कि 'गुडि' शब्द किस भारतीय भाषा का है। हो सकता है ढूंढारी बोली में यह शब्द हो अथवा गुड़ जो खाने में मधुर होता है उसके व्यंजना अर्थ में इसका प्रयोग हुआ हो। अनुप्रास, यमक और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की छटा भी इस ग्रन्थ में यत्र–तत्र छाई है। 'करतार' शब्द का प्रयोग निम्न दोहे में दृष्टव्य है –

परम धरम करतार है, भविजन सुख करतार।
नित बन्दन करता रहूं, मेरा गहि कर तार।।

सतसई साहित्य

हिन्दी की सतसई रचनाओं में **'बिहारी सतसई'** सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त है। कदाचित् राज्याश्रय में रचित होने के कारण उसका प्रचार अधिक हो सका। इसमें भी सन्देह नहीं कि उसके दोहे भाषा, अर्थ–गाम्भीर्य और शिल्प की दृष्टि से अनूठे हैं और साहित्य–रसिक उसके एक–एक दोहे के अनेक अर्थ खोजने का बुद्धि–विलास करते हैं। इसके विपरीत बुधजन जैसे सामान्यजन द्वारा स्वान्तः सुखाय, सरल भाषा में सहज ढंग से अपनी बात कहीं गई है जो पाठकों के मन को सीधे स्पर्श करती है और जिसे समझने के लिए उन्हें एकाएक किसी शब्दकोश का सहारा नहीं लेना पड़ता। यदि **'बिहारी सतसई'** काव्य–शिल्प के प्रचुर अलंकरण से युक्त होने के कारण रूपसी है तो **'बुधजन सतसई'** बिना साज–श्रृंगारवाली सहज रूपसी है। इस दृष्टि से हिन्दी जगत में **'बुधजन सतसई'** तथा अन्य सतसंई ग्रन्थों का सम्यक् मूल्यांकन होना अभीष्ट है।

आध्यात्मिक पद

बुधजन के पदों का जैन जगत में तो काफी प्रचार रहा है, किन्तु हिन्दी जगत में उनका सम्यक् मूल्यांकन होना अभी शेष है। प्राचीन जैन कवियों की रचनाओं के संकलन **हिन्दी–पद संग्रह** (सं. डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल) में उनके 265 पद प्राप्त हो चुकने का उल्लेख है। उक्त पुस्तक में उद्धृत बुधजन के पद विभिन्न राग–रागिनियों पर आधारित हैं। इससे विदित होता है कि उन्हें शास्त्रीय संगीत का ज्ञान भी था। यह विडम्बना है कि जहां एक ओर तुलसी आदि भक्त कवियों और कबीर आदि सन्त कवियों के साहित्य को लौकिक साहित्य माना गया वहीं दूसरी ओर जैन कवियों की भक्तिपरक और आध्यात्मिक रचनाओं को साम्प्रदायिक साहित्य मानकर हिन्दी जगत में उपेक्षा होती रही। यहां उदाहरण के लिए बुधजन के तीन आध्यात्मिक पद दिये जा रहे हैं जिनको पढ़कर पाठक स्वयं यह निर्णय कर लें कि क्या ये भाव, भाषा व काव्य–शिल्प की दृष्टि से किसी से कम हैं, क्या ये साम्प्रदायिक साहित्य की कोटि में आते हैं?

कर्मन की रेखा न्यारी रे विधिना टारी नांहि टरै।
रावण तीन खण्ड को राजा छिन में नरक पड़ै।
छप्पन कोट परिवार कृष्ण के बन में जाय मरै।।1
हनुमान की मात अंजना वन वन रुदन करैं।
भरत बाहुबलि दोऊ भाई कैसा युद्ध करैं।। 2
राम अरु लक्ष्मण दोनों भाई सिय संग वन में फिरैं।
सीता महासती पतिव्रता जलती अगनि परैं।। 3

पांडव महाबली से योद्धा तिनकी त्रिया को हरै।
कृष्ण रुक्मणी के सुत प्रद्युम्न जनमत देव हरै।। 4
को लग कथनी कीजे इनकी, लिखता ग्रन्थ भरै।
धर्म सहित ये करम कौनसा 'बुधजन' यों उचरै।। 5

राग–मांड में निबद्ध उपर्युक्त पद में पूर्व कर्मों के कारण उपर्युक्त महानुभावों के दुर्भाग्य का उल्लेख किया गया है।

मनुवा बावला हो गया। टेर
परवश वस्तु जगत की सारी, निज वश चाहै लया। 1
जीरन चीर मिल्या है उदयवश, यौ मांगत क्यों नया। 2
जे कण बोया प्रथम भूमि मैं, सौ कब और भया। 3
करत अकाज आन कौन निज गिन, सुध पद त्याग दया। 4
आप आप बोरत विषयी ह्वै, 'बुधजन' ढीठ भया। 5

राग–बिहाग में रचित उपर्युक्त पद में "जैसा बोओगे वैसा काटोगे" की बात बताई गई है।

निजपुर में आज मची होरी।।
उमगि चिदानंदजी इत आये, उत आई सुमती गोरी। 1
लोकलाज कुलकाणि गमाई, ज्ञान गुलाल भरी झोरी। 2
समकित केसर रंग बनायो, चारित की पिचकी छोरी। 3
गावत अजपा गान मनोहर, अनहद झरसों बरस्यो री। 4
देखन आये 'बुधजन' भीगे, निरख्यौ खल अनोखो री। 5

राग–सारंग में निबद्ध उपर्युक्त पद में आध्यात्मिक होली का चित्रण हुआ है।

(स्मृतिशेष श्री रमा कान्त जैन ने हिन्दी भारती के जैन साहित्यकारों का परिचय निबद्ध किया है और *शोधादर्श* में भी इस विषय पर उनके महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुए हैं। "हिन्दी भारती के कुछ जैन साहित्यकार" में उनके निबन्धों का संकलन जैन विद्या संस्थान, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी, से 1995 में प्रकाशित हुआ था।

अपने आलेखों द्वारा रमा कान्त जी ने जैन साहित्यकारों के सम्बन्ध में जिज्ञासा जागृत करने और हिन्दी साहित्य में उनके अवदान को समुचित स्थान दिलाने का सम्यक् प्रयत्न किया है। –सम्पादक)

आधुनिक युग–पूर्व हिन्दी के विकास में जैनों का योगदान

– डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

जैन साहित्य के अवलोकन से यह भली प्रकार प्रमाणित है कि 18वीं–19वीं शती विक्रमी में पुरानी हिन्दी में से आधुनिक हिन्दी का विकास उसी प्रकार अलक्ष्य रूप में हुआ जैसा कि 12वीं–13वीं शती में अप्रभ्रंश से पुरानी हिन्दी या देश भाषा का हुआ था और उसके भी पूर्व 5वीं–6ठी शती में प्राकृत से अपभ्रंश का हुआ था। यद्यपि सं0 1700 व 1900 के मध्यवर्ती भक्ति एवं रीति काल का अधिकांश पद्य साहित्य प्रायः ब्रजभाषा में रचा गया, तथापि तथाकथित खड़ी बोली में भी पद्य रचना हिन्दी के उदयकाल से ही मिलने लगती है और उसमें गद्य रचना भी 13वीं–14वीं से 19वीं शती विक्रमी पर्यन्त प्रायः प्रत्येक शताब्दी की उपलब्ध हैं। बल्कि 19वीं शती का हिन्दी जैन गद्यसाहित्य तो उक्त शती के समस्त पद्य साहित्य से कहीं अधिक है और सं0 1760–1860 तथा 1860 से 1920 विक्रमी का प्रायः कोई दशक ऐसा नहीं रहा, जिसमें गद्य साहित्य का निर्माण न हुआ हो। व्यक्तिशः रचयिताओं के निवास स्थान, पृष्ठभूमि, शिक्षा, रुचि, विषय आदि कारणों से उनकी कृतियां ब्रज, पूर्वी (अवधी व भोजपुरी), पछाहीं (हरयानवी), ढुंढारी, राजस्थानी, बुन्देली, मालवी, गुजराती आदि बोलियों से अल्पाधिक प्रभावित पाई जाती है, तथापि उनकी भाषा का मूलरूप तत्कालीन खड़ी बोली का ही मुख्यतया साहित्यिक रूप है, जिसका कोई सम्बन्ध न उर्दू से था और न किसी विदेशी या अजनबी भाषा से। और, ये रचनाएं गूढ़ तत्वज्ञान, न्याय, दर्शन, अध्यात्म, भक्ति, नीति, उपदेश, पुराण, कथा आदि विविध विषयक हैं। उनमें केवल संस्कृत या प्राकृत ग्रन्थों की टीका, वचनिका, व्याख्या, अनुवाद आदि ही नहीं हैं, बड़ी–बड़ी सर्वथा मौलिक रचनाएं भी हैं।

अतएव यह धारणा कि सं0 1860 से पूर्व खड़ी बोली का साहित्यिक अस्तित्व था ही नहीं, यह कि उसमें पद्य तो रचा ही नहीं गया, दो–चार को छोड़कर गद्य रचना भी नहीं हुई, और यह कि सं0 1860–1920 का 60 वर्ष का समय गद्य लेखन की दृष्टि से शून्य रहा, भ्रान्त एवं निर्मूल सिद्ध हो जाती है। साथ ही यह धारणा भी कि उत्तर मुगलकाल (19वीं शती विक्रमी) दिल्ली के पतन का निमित्त पाकर उर्दू के शायरों और दिल्ली के

व्यापारियों के पूरब की ओर फैल जाने से ही इस भाषा का प्रचार हुआ, अल्पांश में ही सत्य हो सकती है।

वस्तुतः विक्रमी 11वीं–12वीं शती हिन्दी का उदयकाल माना जा सकता है। उस क्रान्तिकाल की अपभ्रंश में और प्राचीनतम ज्ञात एवं उपलब्ध हिन्दी में स्वभावतः विशेष अन्तर नहीं है। तदुपरान्त हिन्दी एक स्वतंत्र भाषा के रूप में विकसित होने लगी। 13वीं से 16वीं शती पर्यन्त का वीर गाथाकाल एवं निर्गुणभक्ति या सन्तयुग पुरातन हिन्दी (आधुनिक से पूर्ववर्ती) का निर्माण काल था। प्रारम्भिक रचनाओं में अपभ्रंश का मिश्रण या प्रभाव भी क्वचित प्राप्त होता है। छन्द, शैली आदि उसने प्रायशः अपनी जननी अपभ्रंश से ही अपनाई –16वीं शती में जैन विद्वान पांडे राजमल्ल ने उसके लिए एक नवीन पिंगलशास्त्र भी रच डाला, जो सम्भवतया हिन्दी का सर्वप्रथम पिंगलग्रन्थ है।

16वीं शती के अन्त के पूर्व ही अपभ्रंश एक पुरातन भाषा हो चुकी थी और हिन्दी का साहित्यिक रूप व्यवस्थित हो चुका था – वह लोकोपकारी एवं लोकरंजक साहित्य रचना का प्रधान वाहक बन चुकी थी। किन्तु प्रायः इसी समय उसमें एक नवीन उपक्रान्ति भी हो रही थी – जायसी और तुलसी ने अपनी तत्कालीन क्षेत्रीय बोली अवधी को साहित्यिक पद पर आसीन किया तो ब्रजमंडल में सूरदास एवं अष्टछाप के कवियों ने ब्रजभाषा में उत्तम रचनाएं कीं। ये दोनों बोलियां जनभाषा हिन्दी से किंचित भिन्न होते हुए भी तत्कालीन जनसाधारण के लिए शायद विशेष दुर्बोध नहीं थी। तथापि जायसी और तुलसी की अमर कृतियां अत्युत्तम एवं महत्वपूर्ण होते हुए भी अवधी को व्यापक सर्वग्राह्य हिन्दी साहित्य में उस समय भी और पीछे भी ग्रहण कराने में असमर्थ रहीं। ब्रजभाषा उसकी अपेक्षा अधिक भाग्यवान रहीं।

विक्रमी 17वीं शताब्दी मध्यकालीन भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग था। मुगल सम्राटों अकबर, जहांगीर और शाहजहां के राज्यकाल में कई सौ वर्ष पश्चात् देश को अपेक्षाकृत सुख, शान्ति, समृद्धि एवं सुरक्षा की प्रतीति हुई थी। कला और साहित्य को भी प्रोत्साहन मिला था। धार्मिक सहिष्णुता एवं धार्मिक स्वतंत्रता भी फिर से बहुत कुछ प्राप्त हो गई थी। देश के बहुभाग पर एकच्छत्र व्यवस्थित एवं सुगठित राज्य शासन ने यातायात एवं गमनागमन की सुविधाएं पर्याप्त प्रदान कर दीं थीं। परन्तु भारतीयों की अपनी स्वतंत्रता समाप्त हो चुकी थी। परतंत्र शासन में शान्ति एवं समृद्धि के परिणामस्वरूप देशीय नरेशों एवं रईसों में मुसलमान शासकों

एवं सरदारों की अपेक्षा भी शायद कुछ अधिक विलासप्रियता एवं आमोद–प्रमोद की लालसा घर कर रही थी। धार्मिक एवं नैतिक भावनाएं शिथिल हो रही थीं। जीवन प्रवृत्ति उच्छृंखलता एवं अनियन्त्रित असंयम की ओर उन्मुख थी। अतएव भगवान कृष्ण के प्रसंग को लेकर कृष्णशाखा के भक्त कवियों द्वारा जो श्रृंगार–रस–प्रधान कविता का प्रणयन होता था, उसका प्रचार अधिक होता था। मीरा और सूर के छोटे–छोटे चुभते हुए पद भजन भी याद करने तथा गाने में सरस एवं सुगम थे, अतः जनसाधारण में ही नहीं, राजा–रईसों के दरबारों, शाहीमहलों और नवाबी मजलिसों में भी मनोरंजक सिद्ध हुए।

औरंगजेब के समय में तथा उसके उपरांत प्रायः आधुनिक युग के प्रारंभ पर्यन्त, देश का नैतिक पतन, हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों का ही, द्रुतवेग से उत्तरोत्तर होता गया । फल यह हुआ कि कृष्णशाखा के बल्लभ–सम्प्रदायी मीरा, सूर आदि भक्त कवियों ने अपने इष्टदेव कृष्ण के ब्रज की भाषा को अपनी धार्मिक रचनाओं का माध्यम बनाया तो अप्रत्यक्ष रूप से तत्कालीन समाज की मनोवृत्ति के अनुकूल साहित्य प्रदान करने के कारण उसे ब्रजमंडल के बाहर भी प्रसारित कर दिया। रीतिकालीन कवियों ने तो अपने समय की नैतिक दृष्टि से अत्यंत अवनत परिस्थितियों में अपनी ठेठ श्रृंगारी रचनाओं द्वारा उसका और भी अधिक प्रचार किया। उद्दाम विषय वासना को चरितार्थ करते हुए, कभी–कभी नग्न अश्लीलता का भी प्रदर्शन करते हुए, उन्होंने अपने आश्रयदाता विलासी राजा–रईसों के मनोरंजनार्थ प्रायः कृष्ण के प्रसंग को ही लेकर अनेक काव्य ग्रन्थ रचे। ब्रजभाषा के श्रुतिमधुर, सरस एवं सुबोध होने के कारण भी उसके प्रचार में सहायता मिली।

किन्तु इस पर से यह निष्कर्ष निकाल बैठना भ्रम ही है कि इस प्रकार ब्रजभाषा ही जनभाषा बन गई अथवा साहित्य में भी उसका एकाधिपत्य हो गया। सं0 1700–1900 के रीतिकालीन कवियों की बहुल रचनाओं को देखकर प्रायः यह निश्चित कथन कर दिया जाता है कि आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी का सम्पूर्ण साहित्य ब्रजभाषा में ही था। इस प्रसंग में यह भुला दिया जाता है कि सूर से पूर्व (16वीं शती के अंत तक) का जो साहित्य उपलब्ध है उसका अल्पांश भले ही ब्रजभाषा का कहा जा सके, अधिकांश तो तत्कालीन जनभाषा, खड़ी बोली के प्रकृत रूप में था। तदुपरान्त, उसके साथ–साथ ब्रजभाषा, अवधी और राजस्थानी, तीनों का ही विपुल एवं महत्वपूर्ण साहित्य सृजन हुआ। उपरोक्त कारणों से

ब्रजभाषा के बहुल प्रचार के कारण जैन परम्परा के, सन्तशाखा के तथा अन्य सम्प्रदायों के कवियों ने भी उसे बहुधा अपनाया, तथापि प्रकृत हिन्दी में भी निरन्तर रचनाएं होती रहीं। दूसरे, श्रृंगारी कवियों की रचनाएं अपने आश्रय दाताओं की प्रेरणा से व उनके मनोरंजानार्थ रची जाती थीं, जनसाधारण में उनका प्रचार अत्यल्प ही हो पाता था।

इस कथन का समर्थन इस तथ्य से भी होता है कि यद्यपि बल्लभ–सम्प्रदायी कृष्ण भक्तों ने अपनी धार्मिक 'वार्ताएं' आदि गद्य में निबद्ध करने का भी प्रयत्न किया और साम्प्रदायिक अभिनिवेश के कारण ब्रजभाषा गद्य में ही उन्हें लिखा, किन्तु वास्तविक लोक भाषा न होने के कारण ब्रजभाषा गद्य का कुछ भी प्रचलन या प्रचार न हो सका। उक्त 400 वर्ष के बीच लिखी गई ब्रजभाषा गद्य की जो आठ–दस रचनायें उपलब्ध हैं उनकी भाषा भी परिष्कृत या व्यवस्थित नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि ब्रजभाषा एक सीमित क्षेत्र विशेष की भाषा रही, और उसमें भी सम्भवतया शिष्ट नागरिक रूप में नहीं। इसके विपरीत तथा क्वचित खड़ी बोली गद्य में लगभग दो सौ ग्रन्थ तो मात्र जैन साहित्य के अन्तर्गत ही ज्ञात एवं उपलब्ध ऐसे हैं जो 13वीं से लेकर आधुनिक काल के प्रारंभ (सं0 1920) पर्यन्त रचे गये। इनमें भी लगभग पचास ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें से प्रायः प्रत्येक छापे के लगभग 500 पृष्ठों से अधिक बैठेगा। यद्यपि इनमें से अधिकतर संस्कृत, अपभ्रंश आदि प्राचीन ग्रन्थों के शब्दानुवाद, टीका, व्याख्या, वचनिका आदि ही हैं, तथापि अनेक रचनाएं सर्वथा मौलिक भी हैं। ये ग्रन्थ विविध विषयक हैं, और क्षेत्र की दृष्टि से दिल्ली प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र पर्यन्त विभिन्न प्रदेशों में रचित हैं। वस्तुतः हिन्दी के उस युग में उत्तरापथ के जैनों का निवास इन्हीं में अधिक रहा।

इस युग में जैनों का कोई स्वतन्त्र या उल्लेखनीय राज्य नहीं रह गया था। गुजरात, मध्यभारत, महाराष्ट्र, कर्णाटक, आन्ध्र, तमिल आदि प्रदेशों में जो कई जैन अथवा जिन धर्म पोषक राज्य सत्ताएं चली आ रहीं थीं, प्रायः उन सबको 13वीं शती ईस्वी में उत्तर के मुसलमान आक्रान्ताओं ने समाप्त कर दिया था। 14वीं से 16वीं शती ई. के बीच दक्षिण में विजयनगर साम्राज्य और उत्तरापथ के बुन्देलखण्ड, ग्वालियर, आदि प्रदेश के कतिपय नरेश जैन धर्म के प्रति पर्याप्त सहिष्णु रहे। राजस्थान में आमेर, मेवाड़, मारवाड़, रणथंभोर और बीकानेर आदि प्रायः सभी छोटे बड़े राज्यों में तो जैनों का पर्याप्तमान उसी युग में नहीं, उसके उपरान्त भी बहुत

समय तक चलता रहा जहां वे अनेक उत्तरदायित्व पूर्ण पदों पर भी नियुक्त होते रहे। किन्तु अब वे व्यापारी एवं व्यवसायी हो चले थे और उक्त राज्यों की तत्कालीन समाज के उच्च एवं मध्यम वर्ग का शिष्ट, शिक्षित एवं समृद्ध अंग बने रहे। अतएव सम्पूर्ण देश में प्रत्येक प्रदेशस्थ जैनों का अन्य प्रदेशों के निवासी सजातीयों एवं सहधर्मियों के साथ सामाजिक एवं धार्मिक आदान–प्रदान अबाध रूप से चलता रहता था। व्यापार के निमित्त भी उनका सभी प्रदेशों में गमनागमन एवं सम्पर्क बना रहता था। इस प्रकार जैन जन अपने–अपने समय की प्रचलित सार्वदेशिक लोकभाषा से सर्वाधिक परिचित होते थे, और प्रायः उसी का प्रयोग परस्पर पत्र–व्यवहार, लिखा–पढ़ी, बोलने व लिखने में करते थे। इसीलिए उनका साहित्य भी तत्तद युगों की लोक भाषा का परिचायक रहा। संवत् 1695 में आगरा में रचित अपने **हरिवंश पुराण** (हिन्दी) में जैन कवि सालिवाहन ने तो तत्कालीन देशी भाषा (हिन्दी) को 'देवगिरी' नाम से उल्लिखित कर दिया।

दूसरे, जैन लेखकों ने साहित्य साधना को आजीविका का साधन कभी नहीं बनाया, न उन्होंने किसी राजा रईस के आश्रय या कृपाकांक्षा की अपेक्षा की, वरन् प्रायः स्वान्तः सुखाय या धर्म बुद्धि से प्रेरित होकर ही साहित्य सृजन किया। जैन मुनि, आर्यिका, साधु–साध्वी, भट्टारक, यति आदि स्वयं भी साहित्य साधना करते थे तथा अन्य विद्वानों को प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करके उनसे भी साहित्य निर्माण कराते थे। जैन गृहस्थ के आवश्यक दैनिक षट्कर्मो में शास्त्रदान एक महत्वपूर्ण कर्तव्य होने से नवीन–नवीन ग्रन्थ लिखाने व उनकी प्रतिलिपियां कराकर अन्यत्र भेजने, तथा अन्य स्थानों से प्रतियां मंगाने में भी वे भारी सहायक होते थे। अतएव जयपुर, दिल्ली, आगरा आदि में रचे गये ग्रन्थों की प्रतियां कुछ एक दशकों के भीतर ही बंगाल, बिहार, पंजाब, सिन्ध, मालवा, गुजरात, महाराष्ट्र आदि सर्वत्र फैल जाती थीं। लेखक भी यह जानते थे कि उनकी रचनायें सर्वत्र पढ़ी जायेंगी, अतः उसी भाषा में लिखी जायें जो प्रायः सर्वत्र समझी जा सके, अर्थात् तत्कालीन सर्वाधिक प्रचलित भारतीय लोक भाषा में, किसी प्रदेश की बोली में नहीं।

यह अवश्य है कि अनेक लेखकों की भाषा उनकी अपनी क्षेत्रीय बोली से भी अल्पाधिक प्रभावित रही। एक ही काल की भिन्न–भिन्न रचनाओं की भाषा में भी कभी–कभी कुछ अन्तर दृष्टिगोचर होता है, यहां तक कि एक ही लेखक की पूर्वापर कृतियों की भाषा में भी। लेखक के ज्ञान, अध्ययन, लेखन अभ्यास, रचना विषय से भी उसकी भाषा एवं शैली

प्रभावित रहती ही थी। दार्शनिक या तात्विक रचनाओं, भक्तिपरक साहित्य और कथा ग्रन्थों की भाषा एवं शैली में परस्पर अन्तर होना भी स्वाभाविक है और फिर उस युग में भाषा का एक प्रामाणिक स्तर एवं रूप बनाये रखने का प्रयत्न करने वाले मात्र भाषा के ही आचार्य एवं पत्र–पत्रिकायें आज की भांति नहीं थीं। अतएवं इन सब तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ही उस युग की साहित्यिक भाषा को जांचना–परखना उचित होगा।

इस सब साहित्य को संरक्षित–सुरक्षित रखने का श्रेय भी देश भर के विभिन्न नगरों, कस्बों, ग्रामों एवं तीर्थस्थानों के जिन मंदिरों में स्थित जैन शास्त्र भंडारों को है। इन सरस्वती भंडारों में स्थानीय या तत्सम्बन्धित सभाओं ने, मात्र धर्मबुद्धि से बड़ी श्रद्धा एवं यत्नपूर्वक, यत्र–तत्र से नवीन–नवीन ग्रन्थों की प्रतिलिपियों को निरंतर प्राप्त करते रहने और उनका संरक्षण करने में सफलता प्राप्त की – व्यक्तिगत रूप में यह अति दुष्कर कार्य होता। इससे एक ही ग्रन्थ की अनेक हस्तलिखित प्रतियां विभिन्न ग्रन्थ भंडारों में प्राप्त होती हैं, जैसा कि जैनेतर साहित्य के सम्बन्ध में शायद सम्भव नहीं हुआ। एक ही ग्रन्थ की बहुधा विभिन्न कालीन अनेक प्रतियों के आधार से ग्रन्थ के पाठ का शोधन और उसकी भाषा की जाांच–परख सहज हो जाती है।

(कीर्तिशेष श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने अपने उपरोक्त विचार "जैन सन्देश – शोधांक 50" (31 मार्च 1983) में निबद्ध किये थे। उनका यह गवेषणात्मक लेख भाषाविज्ञान की दृष्टि से और साहित्य सृजन के लिए हिन्दी भाषा के विकास को जानने के लिए महत्वपूर्ण है। – सम्पादक)

भारतीय साहित्य और जैन साहित्यकार

— डॉ. केसरी नारायण शुक्ल

भारतीय संस्कृति 'समुद्र संगम' है जिसमें भारतीय समाज की विविध धाराएं अपने विचारों को युगयुगों से उसमें अर्पित करती रही हैं, भारत में निवास करने वाले अनेक विभिन्न समाज भारत की जलवायु और उसके वातावरण से पोषण ग्रहण करते हुए अपने तत्त्वज्ञान और दर्शन के अनुपम फल भारत एवं विश्व को भेट करते रहे हैं। इन्हीं विभिन्न भारतीय समाजों के बीच जैन समाज की भी अवस्थिति है। भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में उसका योगदान अनुपम एवं महत्वपूर्ण है।

जैन समाज का विशेष दर्शन है, विशिष्ट दृष्टि है। इसकी अपनी आचार–विचार संहिता है और निजी जीवन–पद्धति है। इन्हीं आदर्शो, मूल्यों एवं लक्ष्यों को अभिव्यक्ति देने वाला वाङ्मय **"जैन साहित्य"** कहलाता है। जैन वाङ्मय अथवा जैन साहित्य अत्यंत व्यापक, अनेक रसात्मक तथा बहुमुखी है क्योंकि जैन मनीषी, विचारक, तत्त्वचिन्तक तथा व्यवस्थापक जगत तथा जीवन के प्रत्येक अंग और पक्ष का अनुवीक्षण, परीक्षण तथा विश्लेषण करते रहे और उनकी अन्तर्भेदिनी दृष्टि प्रच्छन्न और प्रकट, प्रत्यक्ष एवं परोक्ष, सबका यथातथ्य विवेचन प्रस्तुत करती रही। उनका व्यक्तित्व दर्शन की निर्ममता अथवा तटस्थता के साथ–साथ लोक कल्याण हेतु करुणा और अहिंसा से आप्लावित था। फलतः जैन साहित्य अत्यन्त व्यापक एवं बहुविषयक है। उसमें एक ओर जहां दर्शन, न्याय (शास्त्र), तत्त्वज्ञान, अध्यात्म एवं आचार शास्त्र की चर्चा है, वहां दूसरी ओर साहित्य शास्त्र, व्याकरण, छंद, अलंकार, कोषादि की विवेचना है; एक ओर जहां विज्ञान, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, वास्तुसार, भूगोल, खगोल आदि की मीमांसा है, वहीं पुराण, चरित काव्य, गाथा, आदि की भी व्यंजना है। इसी प्रकार जैन चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य, तथा उनके प्रालेख अत्यंत महत्पूर्ण एवं अविस्मरणीय हैं।

यदि हम केवल शुद्ध कलात्मक जैन साहित्य को लें तो वह भी दीर्घकालीन विकासशील भारतीय साहित्य परम्परा में अनुस्यूत एवं अक्षुण्ण है; संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के बीच विकसित होता हुआ जैन साहित्य आज आधुनिक भारतीय अभिभाषाओं – गुजराती, मराठी, हिन्दी, बंगला एवं द्राविड़ भाषाओं कन्नड़ तथा तमिल में अभिव्यंजित हो रहा है।

वेद–वोद जायते तत्त्वबोधः। इसी माध्यम से जैन पंडितों ने ज्ञान की धारा को आगे बढ़ाया है, फिर भी अपने पक्ष को प्रतिपादित करते हुए भी वे निस्संदेह ही पूर्वपक्ष से पूर्णतया अवगत थे और मुख्य भारतीय धारा से विच्छिन, कटे हुए अथवा अलग कदापि न थे, वरन् ज्ञान की पूर्ववर्ती परम्परा को आत्मसात कर उसका खण्डन–विवेचन कर उसे उन्होंने आगे बढ़ाया। जैनियों का न्यायशास्त्र प्रसिद्ध ही है। अंकलंक ने बौद्ध नैयायिकों का खंडन किया। हरिभद्र ने दिङ्नाग के **न्याय प्रवेश** पर टीका लिखी, सिद्धचन्द्र और जिनसेन ने बाण तथा माघ के ग्रंथों की टीकाएं रचीं। इस प्रकार जैन विचारधारा भारतीय मुख्य धारा से पृथक कभी नहीं रही।

जैन साहित्य साधना संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश में खूब फली फूली। इसके कवियों का कई भाषाओं पर युगपत् अधिकार था और इनमें से कई ने 'उभय भाषा कवि चक्रवर्ती' की उपाधि धारण की। बल्लभी के राजा गुहसेन (539–569 ई.) को 'संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश भाषा त्रय प्रतिबद्ध प्रबन्ध रचना निगुणतरान्तः करणः' कहा गया है।

रविषेण का **पद्मचरित** अथवा **पद्मपुराण** संस्कृत का अति प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह अत्यधिक लोकप्रिय है और इसका पारायण आज भी जैनों के घर–घर में होता है।

संस्कृत के समान ही भारतीय संस्कृति की विविध धाराओं का अवगाहन करने के लिए **प्राकृत** का महत्व अप्रमेय है। उत्तर तथा दक्षिण दोनों ही प्रदेशों में प्राचीनतम काल से राजकीय आदेश तथा व्यक्तिगत लेखादि प्राकृत भाषाओं में ही लिखे मिलते हैं। प्राकृत में भगवान महावीर के जीवदया एवं अहिंसा के उपदेश हैं। सम्राट अशोक के अभिलेख इसी में खचित हुए, हाल की **सतसई** के मुक्तक रसकण इसी में हैं। इसी में वीरतापूर्ण आह्वान है और इसी में जोइन्दु की रहस्यवादी अभिव्यंजना है। विमल सूरि की **पउमचरिय** प्राकृत की सशक्त रचना है जिसमें रामायण के पात्रों का चित्रण अलौकिक दिव्य रूप में न होकर अत्यंत मानवीय एवं संवेदनशील रूप में प्रस्तुत किया गया है।

श्वेताम्बर जैन आगम ग्रंथ अर्धमागधी में हैं। हरिभद्रसूरि की **समराइच्च कहा** जैन महाराष्ट्री का प्रतिनिधित्व करती है। प्राकृत साहित्य का वह रूप जो दिगम्बर जैनों द्वारा मान्य है शिवार्य की **भगवती आराधना** और कुन्दकुन्द के **पाहुड़ ग्रंथ** में उपलब्ध होता है। ऐसा भी प्रमाण पुष्ट अनुमान है कि उससे भी अधिक प्राचीनतर पाठ **षट्खण्डागम** आदि ग्रंथों की **धवल** और **जयधवल** आदि विशाल टीकाओं में यत्र–तत्र

विद्यमान हैं। यत्र–तत्र संस्कृत गद्यांशों से अलंकृत इन महान ग्रंथों के प्रकाशन से भारतीय साहित्य की न्यायिक शैली की एक नैयायिक शाखा अध्ययन मनन के लिए प्रस्तुत हो गई है। ये संस्कृत प्राकृत टीकाएं अनेक ग्रंथों के उद्धरण, अनुश्रुतियों, नीतिवचन, आख्यान, उपाख्यान तथा तत्कालीन सांस्कृतिक सूचनाओं के भंडार हैं।

प्राकृत के समान **अपभ्रंश** का अध्ययन भी भारतीय संस्कृति के सम्यक् बोध के लिए तथा नवीन भारतीय आर्यभाषाओं के परवर्ती विकास तथा उसके आरम्भिक एवं मध्यकालीन स्वरूप को समझने के लिए आवश्यक है। संस्कृत प्राकृत के समान ही अपने युग की शिष्ट सार्वजनिक भाषा के रूप में व्याप्त अपभ्रंश का साहित्य अत्यंत समृद्ध है जो काव्य, छंदशास्त्र, कोष, नीति शास्त्र तथा जगत जीवन के सूक्ष्म निरीक्षण से युक्त है। इसके निर्माण और समृद्धि में जैन कवियों और आचार्यो का अभूतपूर्व योगदान है। अपभ्रंश की चर्चा करते हुए उनके शीर्षस्थ व्यक्तित्व महाकवि स्वयंभू, अभिमानमेरु पुष्पदंत और कलिकाल–सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र का ध्यान बरबस आ जाता है। सरस्वती द्वारा विपुलमति एवं आदेश पाकर स्वयंभू ने **रामायण** अथवा **पउमचरिउ** की रचना की (तहिं अवसरि सरसइ धीखई, करि कब्जु डिण्णं महं विपुल मई) और राम कथा के सरोवर की शोभा का बखान किया। रस, अलंकार, वक्रोक्ति, अद्भुत एवं मर्मस्पर्शी वर्णनों में पटु स्वयंभू मातृभूमि की वंदना करना नहीं भूलता। **हरिवंशपुराण** उसका अन्य विशाल काव्यग्रंथ है। स्वयंभू निस्संदेह अपने युग का सबसे बड़ा कवि है।

इस युग का अन्य महत्वपूर्ण कवि पुष्पदंत है। इसकी कृतियां **महापुराण, जसहर चरिउ,** और **नाय कुमार चरिउ** अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं किन्तु उनसे भी अधिक महत्वपूर्ण एवं असाधारण है इस कवि का स्वतंत्र स्वच्छंद व्यक्तित्व जो अपने आत्मसम्मान को राजपुरुषों के ऐश्वर्य से अधिक समझता है। 'अभिमान मेरु' पुष्पदंत का स्पष्ट कथन है कि गिरिकंदरा में कसैला भोजन करना श्रेयस्कर है किन्तु दुर्जन की कलुष भावांकित बकिंम भौहें न देखनी पड़ें। सामन्तवाद के उस निरंकुश युग में ऐसी स्पष्टोक्ति के लिए 'अभिमान मेरू' में अपार साहस था। कवि कुरुभूमि को निस्संदेह स्वर्ग मानता है क्योंकि वहां नित्य उत्सव है, नवल तरण है, क्लेश नहीं है और सबसे बड़ी बात यह है कि वहां न कोई दास है और न कोई राजा और सब समान हैं (अगव्व, सुभव्व समाण हिसत्वां–अहो कुरुभूमि निसंसई सग्गु)।

इस युग का सर्वाधिक प्रतिष्ठित व्यक्तित्व आचार्य हेमचन्द्र सूरि का है। आदर और सम्मान की दृष्टि से देखे जाने वाले हेमचन्द्र को 'कलिकाल सर्वज्ञ' कहा गया है। अपभ्रंश की प्रतिष्ठा और व्यवस्था में इनका योगदान अपूर्व और महान है। इनके संस्कृत प्राकृत ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हैं। **प्राकृत व्याकरण, छंदोनुशासन, देशी नाम माला** आदि के द्वारा उन्होंने अपभ्रंश की जो सेवा की है वह अविस्मरणीय है। अपने व्याकरण और छन्दोनुशासन में उन्होंने जो उद्धरण दिए हैं उनसे तत्कालीन युग की दशा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है और स्वयं आचार्य की संवेदनशीलता के भी द्योतक हैं। यह युग की मांग ही थी जिसने आचार्य को वीर–दरपोक्तियों को अपने संग्रह में स्थान देने को विवश किया है –'खड्ग व्यापार' जहां हो, जहां तलवार का मोल हो, हे प्रिय उस देश में जाओ –

'खग्ग बिसाहिउ जहिं जहहु, पिय तहिं देसहिं जाहुं।
रण द्रब्भिक्खे भग्गई, विणु जुज्झेन दलाहुं।।

इसी प्रकार यदि शत्रु द्वारा पिता की भूमि छीन ली जाये तो पुत्र का होना ही निरर्थक है, न उसके जन्म से कोई गुण न उसकी मृत्यु से कोई अवगुण –''पुत्ते जाएं कवण गुण, अवगुण कवण मुएणउ।'' पितृभूमि तो स्वतंत्र ही रहनी चाहिए।

अपभ्रंश युग का साहित्य अत्यंत व्यापक एवं समृद्ध है। सरहवा, स्वयंभू, पुष्पदंत, अब्दुर्रहमान आदि इसके प्रमुख स्तम्भ हैं। इसकी रचना और सुरक्षा में जैनों का महत्वपूर्ण योगदान है। अपभ्रंश के जैन कवियों की सूची बड़ी लम्बी है जिसमें देवसेन, योगीन्दु, रामसिंह, कनकामरमुनि, जिनदत्त सूरि, विनय चन्द्र सूरि, लक्खण, अंतदेवसूरि प्रभृति कवियों का नाम आदर के साथ लिया जाता है।

अपभ्रंश का योगदान परवर्ती आधुनिक आर्यभाषाओं के रूप विकास में अत्यधिक है। इन भाषाओं को अपभ्रंश की भावसम्पदा, काव्यरूप, छंद, अभिव्यंजन की शैलियां आदि सभी कुछ उत्तराधिकार में प्राप्त हुईं। स्थूलरूप में अपभ्रंश की रचनाएं 12वीं शती तक और अपभ्रंश मिश्रित पुरानी हिन्दी की रचनाएं 13वीं शती तक चलती रहीं। तेरहवीं से उन्नीसवीं शती तक रासक काव्य, चरित काव्य, तथा पौराणिक कथा काव्य के रूप में जैन कवियों द्वारा रचनाएं लिखी जाती रहीं। तेरहवी शती में **जम्बूस्वामी रासा,** 14वीं में **समररास,** 15वीं में **गौतम रासा,** 16वीं में **ललितांग चरित्र, कृपण चरित्र,** 17वीं में **भोजप्रबन्ध,** तथा 18वीं में **पार्श्वपुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण** आदि रचनाएं लिखी गई। इनमें पाप–पुण्य,

अहिंसा, नैतिक भावना, मानव मन के संघर्ष आदि का अभिव्यंजन बड़े सूक्ष्म रूप में हुआ है।

संवत् 1580 में कवि ठकरसी द्वारा रचित **कृपण कथा** में किसी कृपण का आंखों देखा हाल प्रस्तुत किया गया है, और उसके धन संचय की प्रकृति की बाध्यता को व्यंजित किया गया है। इसी प्रकार ब्रह्मगुलाल चंदवार द्वारा संवत् 1671 में स्वरचित **कृपण जगावन कथा** भी अत्यंत रोचक एवं सरस है। उसकी रचना का उद्देश्य जिनेन्द्र की पूजा तथा मुनियों को आहारदान देने का समर्थन एवं प्रोत्साहन है। इस प्रकार जैन साहित्य में प्रबन्ध काव्य एवं खण्ड काव्य प्रचुर परिमाण में उपलब्ध हैं।

जैन काव्य का एक अन्य विशिष्ट पक्ष ऐतिहासिक काव्य है जिससे तत्कालीन समाज, संस्कृति तथा इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। ये काव्य प्रशस्ति–मूलक एवं चरितात्मक हैं। इनका वर्ण्य विषय साधुओं और गुरुओं की कीर्ति गाथा, राजा महाराज तथा सम्राटों को प्रभावित कर धार्मिक अधिकार प्राप्ति का आख्यान, तथा जैन धर्म की व्यापकता है। अनेक सूरि और आचार्यों ने मुसलमान बादशाहों से सत्कार एवं सनदें प्राप्त कीं। **श्री अंजना सुंदरी रास** (रचनाकाल संवत् 1661) की प्रशस्ति में कवि ने लिखा है कि हीर विजय जी ने अकबर शाह को प्रतिबोध दिया और श्री विजय सेन गणि ने अकबर के दरबार में भट्ट नामक विद्वान को वाद में परास्त किया था। इसके उपलक्ष में अकबर ने अमारि की घोषणा की–

"जिणिवाहि अकबर नी सभासांहि भट्टपु रे कीधो–कीधो वादु अभंग रे।
गाय, वृषभ महिषादिक जीवनी रे, कीधी–कीधी नित्य अमारि रे।।"

एक गीत में कहा गया है कि जिनप्रभ सूरि की भेंट दिल्ली में अश्वपति मुहम्मद शाह से हुई। सुलतान ने इनका जुलूस निकाला और रहने के लिए 'वसति' निर्माण कराई। एक दूसरे गीत में बताया गया है कि जिनदत्त सूरि ने सिकन्दरशाह को चमत्कार दिखाकर 510 बंदियों को मुक्त कराया।

इसी प्रकार जैन गीत–काव्य में पद साहित्य भी प्रचुर परिमाण में है। बनारसीदास, दौलतराम, बुधजन, भागचंद, आनन्दघन आदि अपने गेयपदों के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार भैया भगवती दास, कविवर भूधरदास, द्यानतराय और कविवर वृन्दावन जी के पद अपनी मार्मिकता एवं भावुकता के लिए विख्यात हैं।

हिन्दी साहित्य को जैन हिन्दी साहित्य की सबसे बड़ी देन कविवर बनारसीदास हैं। उनकी कृति हिन्दी के लिए जितनी महान है उतना ही उनका व्यक्तित्व सत्यनिष्ठ, सरल एवं आकर्षक है। निष्ठावान जैनी होते हुए भी वह उदारतापूर्वक कह सका कि 'एक रूप हिन्दू तुरक, दूजी दशा न कोई और दोऊ भूले भरम में'। अध्यात्म और अद्वैत् की दृष्टि से समन्वित कवि को घट–घट में राम ही दिखाई पड़ता है। 'मेरे नैनन देखिए, घट–घट अन्तर राम'। कवि की उदार दृष्टि समय की आवश्यकता – हिन्दू मुस्लिम एक्ट को पहचान सकी।

कविवर की हिन्दी को अपूर्व भेंट उनकी आत्मकथा **अर्धकथानक** है जिसमें कवि ने अपने जीवन की अच्छी बुरी सभी बातों को बड़े सहज रूप में अत्यंत सत्यनिष्ठा के साथ बिना कुछ दुराव छिपाव के पाठक के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया है। अत्यधिक रोचक एवं विश्वसनीय होने के साथ–साथ यह रचना हिन्दी की सर्वप्रथम आत्मकथा है। मध्यदेश की बोली में लिखा गया यह ग्रंथ अपने युग का बड़ा सजीव चित्र प्रस्तुत करता है और कवि के करुण, प्रवंचित तथा दुर्भाग्यपूर्ण जीवन की मार्मिक झलकियां देता है। व्यापार में उसे हमेशा घाटा हुआ। 'दो हीरे की अंगेठी, चौबीस मणिक, चौतीस मणि, नौ नीलम, बीस पन्ना, चार गांठ फुटकर चुन्नी, बीस मन घी, दो कुप्पी तेल लेकर कवि व्यापार के लिए चला किन्तु कुछ खो गया, कुछ ठग लिया गया और कुछ नष्ट हो गया। उसे कुष्ठ हो गया, उसकी दो पत्नियां तथा नौ बच्चे काल के गाल में समा गए और वह पतझड़ के ठूंठ की तरह रह गया। जीवन में उसे सुख–शांति कभी न मिली। इन सबका अत्यंत मार्मिक वर्णन इस आत्मकथा में प्राप्त है। आत्मकथा कविवर का अनुपम रत्न है यद्यपि उसकी अन्य रचनाएं भी प्राप्त हैं। चौदह वर्ष की अवस्था में उसने एक हजार दोहा चौपाईयों की 'नवरस रचना' लिख डाली थी जिसमें आशिकी का ही विशेष वर्णन था। आगे चलकर जब कवि को ज्ञानोदय हुआ तो उसने इस पोथी को गोमती में डुबो दिया, जल समाधि दे दी। कविवर की अन्य प्रौढ़ रचनाएं धर्म और साहित्य दोनों के लिए बड़े महत्व की हैं। पद्य के साथ गद्य की रचना भी कविवर ने की है।

जैन साहित्य अपनी गद्य विधा के लिए भी महत्वपूर्ण है। इसमें हिन्दी गद्य का प्रयोग धार्मिक साहित्य के निर्माण के लिए तेरहवी शताब्दी से किया जाने लगा। 'जगत्सुरी प्रयोगमाला' आयुर्वेद का ग्रंथ है जो तेरहवी शताब्दी की रचना अनुमानित है। चौदहवीं शताब्दी की रचनाओं में 'आराधना अतिचार' का नाम लिया जाता है।

प्राचीन गद्य में वचनिका, कथाएं, टीकाएं आदि मिलती हैं। सत्रहवी शताब्दी में राजमल पाण्डेय ने **समयसार** पर टीका लिखी। इसी शताब्दी में बनारसी दास ने **परमार्थ वचनिका** और **उपायन निमित्त की चिठ्ठी** गद्य में लिखी। श्री शाहमहाराज पुत्ररायरछ कृत **प्रद्युम्न चरित** ग्रंथ भी इसी शताब्दी का है। वचनिकाकारों में पाण्डे हेमराज का नाम अग्रगण्य है (**गोम्मट सार**' और **नयचक्र** की वचनिका)। अठारहवीं शताब्दी में दीपचन्द्र कासलीवाल ने जैन हिन्दी गद्य साहित्य की भी वृद्धि की। पंडित दौलतराम ने पुण्यास्रवकथाकोष, पद्मपुराण, आदिपुराण और वसुनंदि श्रावकाचार ग्रंथों का हिन्दी गद्य में अनुवाद किया। उन्नीसवीं शताब्दी के हिन्दी गद्य की चर्चा करते हुए राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिंद' का नाम लेना अनिवार्य है। उन्होंने हिन्दी की स्वतंत्र सत्ता की प्रतिष्ठा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनकी पुस्तक '**इतिहास तिमिर नाशक**' की बड़ी प्रसिद्ध रही। भारतेंदु हरिश्चन्द्र इनको अपना गुरु मानते थे और उन्होंने मुद्राराक्षस नाटक का अनुवाद इन्हें समर्पित किया था। इसी शताब्दी में कवि भूधरदास ने '**चर्चा समाधान**' नामक गद्य ग्रंथ लिखा। इस शताब्दी के अन्य गद्य लेखकों में धर्मदास, टोडरमल, जयचन्द्र आदि प्रमुख हैं। बीसवीं शताब्दी में पं0 सदासुखलाल, पन्ना लाल चौधरी, पं0 भागचंद आदि कई प्रमुख टीकाकार हुए। जैन गद्य साहित्य का विकास उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध आदि के रूप में इस शताब्दी में निरंतर हो रहा है, जो अत्यंत शुभ लक्षण है। जैन साहित्य अभिनंदनीय है क्यों कि जैन ग्रंथकारों ने भारतीय ज्ञान के विविध अंगों तथा विविध भाषाओं को समृद्ध किया।

कल्पवृक्ष से हम जो चाहते हैं वह हमें मिल जाता है। साहित्य हमारे मन का कल्प है। हमारा मन जो है और जैसा होना चाहता है उसी का रूप साहित्य है। भारतीय साहित्य कल्पवृक्ष है और जैन साहित्य इसकी एक शाखा जो हाथ हिला–हिलाकर भवताप से तापित व्यक्तियों को अपनी ओर बुलाती हुई कहती है कि इधर आओ, यहां तुमको छाया मिलेगी, यहां तुमको शीतलता मिलेगी, यहां तुमको शरण मिलेगी।

(स्मृतिशेष डॉ. शुक्ल ने 'भारतीय संस्कृति में जैन विचारधारा' विषयक 4–द्विवसीय संगोष्ठी के 26 अक्टूबर 1975 के प्रथम सत्र में अध्यक्षीय भाषण में उपरोक्त विचार प्रस्तुत किये थे। डॉ. शुक्ल उस समय लखनऊ विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष तथा कला संकाय के डीन थे। – सम्पादक)

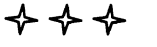

प्राकृत का अभिलेखीय साहित्य

– डॉ. शशि कान्त

पश्चिमोत्तर में हेलमंड नदी तक विस्तीर्ण, उत्तर में हिन्दुकुश और हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं से आवृत्त, पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी से और बंगाल की खाड़ी से घिरा हुआ, दक्षिण में हिन्द महासागर और पश्चिम में अरब सागर से आवृत्त विशाल भूखण्ड, भारतवर्ष के भौगोलिक अस्तित्व का बोध कराता है। राजनीतिक दृष्टि से यह सम्पूर्ण भूभाग ऐतिहासिक काल में कभी भी एक इकाई के रूप में संगठित नहीं रहा।

राजनीतिक दृष्टि से इसके जो विशालतम रूप पाये गये वे ईस्वी सन् पूर्व चौथी–तीसरी शती में मौर्य साम्राज्य के रूप में, चौथी–पांचवी शती ईस्वी में गुप्त साम्राज्य के रूप में, सोलहवीं–सत्रहवी शताब्दी में मुगल साम्राज्य के रूप में, और 1857 से 1947 तक ब्रिटिश साम्राज्य के रूप में, हैं। नर्मदा नदी के दक्षिण में राजनीतिक एकीकरण के उदाहरण नवी–बारहवी शती में चोल साम्राज्य और चौदहवी–सोलहवीं शती में विजय नगर साम्राज्य, हैं।

वर्तमान में इस सम्पूर्ण विशाल भूखण्ड में, पश्चिम में अफगानिस्तान और पाकिस्तान, उत्तर में नेपाल और भूटान, पूर्व में बांग्लादेश, तथा शेष सम्पूर्ण क्षेत्र में भारतीय संघ, जिसे सामान्यतया भारत, इण्डिया और हिन्दुस्तान के नाम से जाना जाता है, स्थित हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से यह सम्पूर्ण भूखण्ड ऐतिहासिक काल में, अर्थात् लगभग विगत पांच हजार वर्ष में, प्रायः एक सूत्र में बंधा रहा है। इस सूत्र बन्धन की एक विशेषता यह है कि इसमें विविधता को विशेष रूप से समाहित किया गया है।

वैदिक–आर्य और उससे निःसृत ब्राह्मणीय संस्कृति, प्राग्–आर्य सांस्कृतिक मान्यतायें जिनमें शिव और देवी की आराधना विशिष्ट है, तथा श्रमण सांस्कृतिक परम्परायें जिनमें जैन और बौद्ध को मोटे रूप से जाना जाता है, भारतीय सांस्कृतिक स्वरूप को व्यापक रूप से इंगित करती हैं। ब्राह्मणीय और श्रमणीय विचारधारा में विशेष अन्तर यह रहा कि ब्राह्मणीय परम्परा में कर्मकाण्ड पर विशेष आग्रह रहा जब कि श्रमण परम्परा में तपस्या एवं सात्विक आचरण पर विशेष आग्रह रहा।

उपरोक्त क्षेत्रगत भूमिका इस दृष्टि से प्रासंगिक है कि अभिलेखों में प्रयुक्त भाषा की व्यापकता को समझा जा सके। मात्र आज के भारत

की भौगोलिक सीमाओं के आधार से उक्त भाषा की व्यापकता को सूचित किया जाना उचित नहीं है।

साहित्यिक प्राकृत के जो रूप आज उपलब्ध हैं, यथा शौरसेनी, अर्धमागधी, महाराष्ट्री, पैशाची, वे मूल प्राकृत भाषा का बोध नहीं कराते। मौर्य सम्राट अशोक के शिलालेखों से यह इंगित होता है कि ईस्वी सन् पूर्व तीसरी शताब्दी में, प्राकृत भाषा का एक ऐसा रूप प्रचार में था जो पश्चिमोत्तर में अफगानिस्तान व पाकिस्तान, उत्तर में नेपाल, पूर्व में बिहार–बंगाल व उड़ीसा, दक्षिण में पेन्नार नदी के उत्तर में कर्नाटक प्रदेश और पश्चिम में गुजरात प्रदेश के अंतर्गत सौराष्ट्र तक उसी प्रकार बोला और समझा जाता था जैसे कि वर्तमान में हिन्दी सम्पूर्ण भारत में समझी जाती है। अशोक के अभिलेख अफगानिस्तान में जलालाबाद के पास लग़मान में पुले–दारूंत में और कन्दहार के पास शर–ए–कुना में पाये गये हैं। पाकिस्तान के पश्चिमोत्तर में हज़ारा जिले में मानसेहरा और पेशावर जिले में चरसड्डा के पास शहबाज़गढ़ी में भी अशोक के अभिलेख प्राप्त हुये हैं। इन अभिलेखों में जिस प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है उसी प्राकृत भाषा का प्रयोग भारत के अन्य स्थलों पर पाये गये अशोक के अभिलेखों में हुआ है, अन्तर केवल यह है कि अफगानिस्तान और पाकिस्तान में प्राप्त अभिलेख खरोष्ठी लिपि में है जब कि भारत में प्राप्त अभिलेख ब्राह्मी लिपि में हैं।

अशोक के अभिलेखों में प्राप्त प्राकृत भाषा का जो रूप उपलब्ध है उससे यह विदित होता है कि मौर्य साम्राज्य की राज–भाषा (official language) के रूप में उसका प्रचलन था। व्याकरण–रचना की दृष्टि से इन अभिलेखों में प्रयुक्त भाषा में विभिन्न प्रदेशों में विशेष अन्तर नहीं है परन्तु ध्वन्यात्मक दृष्टि से पाठ–भेद मिलते हैं, यथा *बाम्हण–समणानं* का पाठ–भेद *बंभन–समनेहि* अथवा *ब्रमण–श्रमननं*।

अशोक के प्रायः एक शताब्दी बाद उड़ीसा में उदयगिरि की पहाड़ी पर हाथीगुम्फा के शीर्ष पर राजा खारवेल का शिलालेख उत्कीर्ण है। यह शिलालेख सत्रह पंक्तियों में उत्कीर्ण है और खारवेल के वंश तथा उसके कार्य–कलापों का काल–क्रमानुसार विवरण देता है। इसमें प्रयुक्त भाषा अशोक के अभिलेखों में प्रयुक्त भाषा से प्रायः समानता रखती है। इससे यह इंगित होता है कि मौर्य सम्राज्य के समाप्त हो जाने के बाद उस सम्राज्य के जिन प्रादेशिक अधिकारियों ने अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिये थे उन्होंने साम्राज्य की राजभाषा को ही अपनाया था। इसके उदाहरण पूर्वी

भारत में कलिंग में राजा श्री खारवेल तथा पश्चिमी भारत में सातवाहन राजवंश रहे।

तीसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व से पांचवी शताब्दी ईस्वी तक जो अभिलेख उत्तर प्रदेश में मथुरा और कौशाम्बी में तथा महाराष्ट्र में नासिक–पुणे क्षेत्र में मिले हैं तथा उत्तर भारत के अन्य क्षेत्रों में भी मिले हैं, वे सभी प्राकृत भाषा में और ब्राह्मी लिपि में हैं। अधिकांश अभिलेख जैन धर्म और बौद्ध धर्म के अनुयायियों द्वारा दान स्वरूप अभिलिखित किये गये हैं। विदिशा से गरुड–ध्वज के रूप में प्राप्त अभिलेख वैष्णव धर्म से सम्बन्धित है और उसकी विशेषता यह भी है कि उसमें अभिदाता के रूप में एक यवन (यूनानी) हेलियोदर (हेलियोडोरस) का उल्लेख है। अधिकांश अभिलेख विदेशों से आये शक–कुषाण–यवन आदि जातियों से जैनधर्म और बौद्धधर्म अंगीकार करने वालों के हैं।

यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि अभिलेखों में सर्वप्रथम संस्कृत भाषा में और काव्य शैली में निबद्ध अभिलेख गिरनार की सुदर्शन झील पर, अशोक के शिलालेख–समूह के पास ही, उत्कीर्ण, उज्जयिनी के शक राजा रूद्रदामन का है जो उसने शक सम्वत् 72 (= 150 ईस्वी) में लिखवाया था। संस्कृत में अभिलेखों के लिखे जाने का प्रचलन चौथी शताब्दी ईस्वी से गुप्त साम्राज्य में प्रारंभ हुआ। इलाहाबाद में अशोक की लाट पर अशोक के अभिलेखों के नीचे गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त की काव्य शैली में निबद्ध संस्कृत भाषा में हरिषेण की प्रशस्ति उत्कीर्ण है। यह एक विस्मयकारी तथ्य है कि यद्यपि मौर्य साम्राज्य के उच्छेद के बाद पुष्यमित्र शुंग ने ब्राह्मणीय परम्परा का पुनरुत्थान किया था, उसने तथा उसके वशंजों ने संस्कृत भाषा का अभिलेखों में प्रंयोग नहीं किया वरन् मौर्य साम्राज्य से चली आ रही राजभाषा प्राकृत का ही प्रयोग किया। प्रायः पांचवी शती ईस्वी के बाद अभिलेखों में प्राकृत भाषा का प्रयोग बन्द हो गया। परवर्ती समय में उसके बाद जोधपुर जिले में घटयाला के पास सम्वत् 918 (= 861 ईस्वी) का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है। यह अभिलेख साहित्यिक जैन महाराष्ट्री प्राकृत में काव्य शैली में 23 छन्दों में निबद्ध है और इसमें कक्कुक द्वारा एक जैन मंदिर के निर्माण, एक हाट की स्थापना और दो स्तम्भों के निर्माण कराये जाने का उल्लेख किया गया है। अपना वंश परिचय देते हुये कक्कुक ने यह भी उल्लेख किया है कि उसके पिता ब्राह्मण थे और माता क्षत्रिय थी।

अशोक मौर्य और कलिंग के खारवेल के अतिरिक्त प्राकृत भाषा में जो अभिलेख उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार और उड़ीसा में प्राप्त हुये हैं

उनसे यह संकेत मिलता है कि अभिलेखों में प्रयुक्त प्राकृत भाषा को जन भाषा के रूप में समझा जा सकता है और उसे प्राकृत भाषा के जो साहित्यिक रूप उपलब्ध हैं उनसे समीकृत किया जाना उपादेय नहीं होगा। इन अभिलेखों में बहुत से धर्म एवं समाज व्यवस्था से सम्बन्धित सूत्र भी मिलते हैं। मथुरा से प्राप्त अभिलेखों से यह विदित होता है कि जैन धर्म और बौद्ध धर्म का प्रसार निम्न वर्ण के जन समुदाय में प्रचुरता से था और विदेशी मूल के लोगों ने भी इन धर्मो को अपनाया था। प्राकृत भाषा में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्राप्त अभिलेखों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, धर्म निरपेक्ष भाव से किया जाना अभीष्ट है।

प्राकृत के अभिलेखीय साहित्य की विशेषता और ऐतिहासिक दृष्टि से उसकी उपयोगिता एवं उपादेयता का संक्षिप्त परिचय उपरोक्त विवेचन में दिया गया है। इसका आशय यह है कि प्राकृत भाषा में रुचि रखने वाले शोधार्थी इस पक्ष को भी दृष्टि में रखें और मात्र शास्त्रीय अध्ययन से ही प्रतिबन्धित न रहें।

———————

(राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान और श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, के तत्त्वावधान में दिनांक 10 से 12 मई, 2012 को राष्ट्रिय प्राकृत संगोष्ठी का, 'भारतीय परम्परा में प्राकृत भाषा और साहित्य का अवदान' विषय पर, आयोजन किया गया था। उसमें "प्राकृत का अभिलेखीय साहित्य" वर्ग में उपरोक्त शोध पत्र प्रस्तुत किया गया था।)

क्या Kalanos (कल्याण मुनि?) दिगम्बर जैन मुनि थे?

– श्री अजित प्रसाद जैन

यूनानी लेखकों के आधार पर एक अनुश्रुति प्रचलित है कि सिकन्दर महान को तक्षशिला के वन प्रान्तर में कुछ दिगम्बर मुनियों के दर्शन हुए थे जो कठोर योग साधना में लीन थे तथा उसकी प्रार्थना पर उनमें से एक मुनि कल्याण श्री (Kalanos) उसकी वापसी की स्वदेश यात्रा में यूनान के लिए चले थे किन्तु मार्ग में ईरान में ही उन्होंने अपना अन्त समय जान चिता प्रवेश कर अपना शरीरान्त कर दिया था।

जैन विद्वानों एवं इतिहास वेत्ताओं ने उन कल्याण मुनि को दिगम्बर जैन मुनि घोषित किया है तथा लिखा है कि उन्होंने सल्लेखना व्रत धारण करके समाधि मरण किया था। हम भी ऐसा ही समझते रहे हैं तथा अभी हाल ही में **वर्णी प्रवचन** पत्रिका के विद्वान सम्पादक ने फरवरी–मार्च 1992 के अंक में अपने सम्पादकीय लेख "सिकन्दर महान एवं दिगम्बर मुनि" में भी उन कल्याण मुनि को दिगम्बर जैन मुनि ही माना है। किन्तु इस धारणा की विश्वसनीयता में एक बात विशेष रूप से खटकने वाली है। यूनानी इतिहासकारों के अनुसार कल्याण मुनि ने चिता प्रवेश कर शरीरान्त किया था। तो क्या उस काल में जब भगवान महावीर के मोक्ष गमन को दो सौ वर्ष से भी कुछ कम समय हुआ था तथा अंग–पूर्वो के एक–देशधारी महान ज्योतिर्धर आचार्य विद्यमान थे, चितारोहण या इसी प्रकार के अन्य हिंसात्मक बलात् (violent) तरीकों से शरीरान्त कर समाधि मरण को शास्त्र सम्मत विधि माना जाता था। यदि ऐसा था तो केवल निराहार व निर्जल रहकर धीरे–धीरे शरीर कृश करके शरीरान्त करने की प्रथा कब से प्रारम्भ हुई तथा हिंसात्मक तरीके से अल्प समय में ही शरीरान्त करने की विधि कब समाप्त हुई, इस पर विद्वत्–जन प्रकाश डालने की कृपा करें। हमारी अतिसीमित जानकारी के अनुसार तो **आचारांग, मूलाचार** एवं अन्य जैन आगमों में शस्त्राघात, विषपान, सर्पदंश, जल प्रवेश, अग्नि प्रवेश, फांसी आदि के द्वारा बलात् हिंसात्मक (violent) तरीके से शरीरान्त करने को कहीं भी मान्यता नहीं प्रदान की गई है बल्कि उसका स्पष्ट निषेध किया गया है तथा उसे आत्महत्या की संज्ञा देकर तीव्र अशुभ कर्म के बंध का कारण माना गया है।

संल्लेखना व्रत का धारी साधक न तो शीघ्र मरण की कामना करता है और न ही जीने की आकांक्षा करता है। उसकी साधना तो सम्पूर्ण परिग्रह व परिजनों के मोह एवं स्वशरीर के ममत्व के पूर्ण त्याग को प्राप्त करना है। अग्नि प्रवेश करके शरीरान्त करना समाधि मरण की संज्ञा में नहीं आता तो तथाकथित कल्याण मुनि को दिगम्बर जैन मुनि मानना तथा उनके अग्नि प्रवेश को समाधि मरण कहना संगत नहीं है।

भगवान महावीर के समय में कई ऐसे श्रमण धर्माचार्यो के उल्लेख मिलते हैं जो पूर्ण नग्न भी रहते थे तथा जिनकी बहुत सी बाह्य क्रियाएं जैन श्रमणों से मिलती थीं और जो अपने को तीर्थंकर भी कहते थे जैसे अजित केसकंबली और आजीवक सम्प्रदाय के प्रर्वतक मक्खलि गोशाल आदि। सम्भव है, इनमें से कुछ धर्माचायों की परम्परा उनके कुछ सैकड़ों वर्ष बाद तक चलती रही हो तथा कल्याण मुनि उन्हीं में से किसी के अनुयायी रहे हों। यह भी विचारणीय है कि जैन कथा साहित्य बहुत विशाल है और उसमें अनेक जैन धर्मावलम्बी वणिकों का वर्णन आता है जो समुद्री यात्रा करके दूसरे द्वीपों व देशों को गए किन्तु उनके साथ किसी जैन मुनि का विदेशों में जाने या बसने का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

यूनानी और रोमन इतिहासकारों द्वारा कालानोस के विषय में जो जानकारी दी गई है उसे भी J.W. M'crindle : की पुस्तक **Ancient India – The Invasion of India by Alexander the Great,** से नीचे यथावत उद्धृत किया जा रहा है जिससे सूचित होता है कि उक्त साधु का नाम भी 'कालानोस' नहीं था वरन् यह यूनानियों द्वारा उनको दिया गया नाम था तथा यह भी कि उनके आचार–विचार का भी जैन साधुओं की चर्या और जैन सिद्धान्त से कोई सादृश्य नहीं था –

KALANOS was a gymnosophist of Taxila, who left India with Alexander, and burned himself alive on a funeral pile at Sousa. His real name, Plutarch says was *Sphines*; but the Greeks called him *Kalanos,* because, in saluting those he met, he used the word *kale*! eqivalent to hail! The Sanskrit adjective *kalyāṇa* means salutary, lucky, well , etc.

Arrian, in **The Anabasis of Alexander,** writes : Megasthenes has stated that Kalanos, one of the philosophers of Taxila, was persuaded to go since he had no power of self-control, as the philosophers themselves allowed, who upbraided him because he had deserted the happiness among them, and went to serve another master

than the deity. When he was in the country of Persia he fell into delicate health, though he had never before had an illness. Accordingly, as he had no wish to lead the life of an invalid, he informed Alexander that, broken as he was in health, he thought it best to put an end to himself before he had experience of any malady that would oblige him to change his former mode of life. Alexander long and earnestly opposed his request; but when he saw that he was quite inflexible, and that if one mode of death was denied him he would find another, he ordered a funeral pyre to be piled up in accordance with the man's own direction, and ordered Ptolemy, the son of Lagos, one of the bodyguards, to superintend all the arrangements. Some say that a solemn procession of horses and men advanced before him, some of the men being armed, while others carried all kinds of incense for the pyre. Others again say that they carried gold and silver bowls and royal apparel; also, that a horse was provided for him because he was unable to walk from illness. He was, however, unable to mount the horse, and he was therefore carried on a litter crowned with a garland, after the manner of the Indians and singing in the Indian tongue. The Indians say that what he sang were hymns to the gods and the praises of his countrymen, and that the horse which he was to have mounted - a Nesaian steed of the royal stud - he presented to Lysimachos who attended him for instruction in philosophy. On others who attended him he bestowed the bowls and rugs which Alexander to honor him, had ordered to be cast into the pyre. Then mounting the pile, he lay down upon it in a becoming manner in full view of the whole army. Alexander deemed the spectacle one which he could not with propriety witness, because the man to suffer was his friend; but to those who were present Kalanos caused astonishment in that he did not move any part of his body in the fire. As soon as the men charged with the duty set fire to the pile, the trumpets, Nearchos says, sounded by Alexander's order, and the whole army raised the war-shout as if advancing to battle. The elephants also swelled the noise with their shrill and warlike cry to do honor to Kalanos.

Plutarch, in **The Life of Alexander,** gives another notice of Kalanos : It was here (in Persepolis) that Kalanos, on being for a short time afflicted with colic, desired to have his funeral pile erected.

He was conveyed to it on horseback, and after he had prayed and sprinkled himself with a libation, and cut off part of his hair to cast into the fire, he ascended the pile, after taking leave of the Macedonians, and recommending them to devote that day to pleasure and hard drinking with the king, whom, said he, I shall shortly see in Babylon. Upon this he lay down on the pyre and covered himself up with his robes. When the flames approached he did not move, but remained in the same posture as when he lay down until the sacrifice was auspicously consummated, according to custom of the sages of his country.

Strabo in his **Geography** makes the following notices : Aristoboulos says that he saw at Taxila two sophists, both Brachmans, of whom the elder had his head shaved, while the younger wore his hair; disciples attended both. They spent their time generally in the market-place. They are honoured as public counsellors, and are free to take away without charge any article exposed for sale which they may choose. He who accosts them pours over them oil of Jessamine in such quantities that runs dwon from their eyes. They make cakes of honey and sesamum, of which large quantities are always for sale and their food thus costs them nothing. At Alexaner's table they ate standing, and, to give a sample of their endurance, withdrew to a spot not far off, where the elder, lying down with his back to the ground, endured the sun and the rains which had set in as spring had just begun. The other stood on one leg, holding up with both his hands a bar of wood 3 cubits long; one leg being tired he rested his weight on the other, and did this throughout the day. The younger seemed to have far more self-command; for though he followed the king a short distance, he soon returned to his home. The king sent after him, but the king, he said, should come to him if he wanted anything from him. The other accompanied the king to the end of his life. During this stay he changed his dress and altered his mode of life, saying, when reproached for so doing, that he had completed the forty years of discipline which he had vowed to observe. Alexander gave presents to his children.

Onesikritos says that he himself was sent to converse with these sages... ... He found at the distance of twenty stadia from the city fifteen men standing in different attitudes, sitting or laying down naked, and continuing in these positions till the evening, when they went back to the city. What was hardest to bear was the

heat of the sun, which was so powerful that no one else could bear without pain to walk barefooted on the ground at mid-day.

He conversed with Kalanos, one of these sages, who accompanied the king to Persia, and burned himself after the custom of his country on a pile of wood. Onesikritos found him lying upon stones, and drawing near to address him, informed him that he had been sent by the king, who had heard the fame of his wisdom. As the king would require an account of the interview, he was prepared to listen to his discourse if he did not object to converse with him. When Kalanos saw the cloak, head-dress, and shoes of his visitor, he laughed and said : "Formerly there was abundance of corn and barley in the world as there is now of dust; fountains then flowed with water, milk, honey, wine, and oil, but repletion and luxury made men turn proud and insolent. Zeus, indignant at this, destroyed all, and assigned to man a life of toil. When temperance and other virtues in consequence again appeared, then good things again abounded. But at present the condition of mankind tends to satiety and wantonness, and there is cause to fear lest the existing state of things should disappear." When he had finished he proposed to Onesikritos, if he wished to hear his discourse, to strip off his clothes, to lie down naked beside him on the same stones, and in that manner to hear what he had to say.

While he was uncertain what to do, Mandanes, the oldest and wisest of the sages, reproached Kalanos for his insolence - the very vice which he had been condemning. Mandanes then called Onesikritos to him, and said, I commend the king, because, although he governs so vast an empire, he is yet desirous of acquiring wisdom, for he is the only philosopher in arms that I ever saw. "The tendency of his discourse," he said, "was this, that the best philosophy was that which liberated the mind from pleasure and grief; that grief differed from labour, in that the former was pernicious, the latter friendly, to men; for that men exercised their bodies with labour to strengthen the mental powers, whereby they would be able to end dissensions, and give every one good advice, both to the public and to private persons; that he should at present advise Taxila to receive Alexander as a friend; for by entertaining a person better than himself he might

be improved, while by entertaining a worse he might influence that person to be good." After this Mandanes inquired whether such doctrines were taught among the Greeks. Onesikritos answered that Pythagoras taught a like doctrine, and instructed his disciples to abstain from whatever had life; that Sokrates and Diogenes, whose discourse he had heard, held the same views. Mandanes replied, that in other respects he thought them to be wise; but that they were mistaken in preferring custom to nature, else they would not be ashamed to go naked as he did, and to live on frugal fare, for, said he, that is the best house that requires least repairs.

He states further that they employ themselves much on natural subjects as forecasting the future, rain, drought, and diseases. On going into the city they disperse themselves in the market-places. Every wealthy house, even the women's apartments, is open to them. When they enter they converse with the inmates and share their meal. Disease of the body they regard as very disgraceful, and he who fears that it will attack him, prepares a pyre and lets the flames consume him. He anoints himself beforehand, and when he has placed himself upon the pile orders it to be lighted, and remains motionless while he is burning.

Nearchos gives the following account of the sages : The Brachmans engage in public affairs, and attend the kings as counselors; the rest are occupied in the study of nature. Kalanos belonged to the latter class. Women study philosophy with them, and all lead an ascetic life.

(उपरोक्त विवेचना स्मृतिशेष श्री अजित प्रसाद जैन ने *शोधादर्श 16–17* में जुलाई 1992 में प्रकाशित की थी। 'कालानोस' से तात्पर्य 'कल्याण मुनि' से नहीं है और प्राप्त विवरण इस नाम से उल्लिखित व्यक्ति को दिगम्बर जैन मुनि सूचित नहीं करता। इतिहास शोधन की दृष्टि से यह विवेचना आज भी प्रासंगिक है। – सम्पादक)

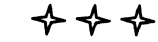

The Udayana–Vihāra

- Prof. D.C. Sircar

A devout Jain named Udayana was the Chief Minister of the great Solanki king Jayasiṁha Siddharāja (1094-1144 A.D.) of Anahila-pattana. He is known to have continued to serve under Jayasiṁha's successor Kumārapāla (1144-73 A.D.) Whom he is said to have once sheltered at Cambay against Jayasiṁha's wrath. There are conflicting traditions regarding Udayana's death, the date of which cannot be determined.

According to Merutuṅga, Udayana became mortally wounded in a battle with the king of Saurashtra, whom he had attacked under orders of his master Kumārapāla. Jayasiṁha-sūri and Jinamaṇḍaṇa, however, state that he succeeded in killing the Saurashtra king and in setting up the latter's son on the throne. On the other hand, Prabhāchandra says that Udayana died in a struggle with the Saurashtra king during the reign of Jayasiṁha Siddharāja and not of Kumārapāla.

Udayana's son Vāgbhaṭa or Bahada is said to have been adopted as son by king Jayasiṁha and to have later on served Kumārapāla as a minister. On the death of his father Udayana, Vāgbhaṭa is known to have built a religious establishment at Dhavalakka which is the modern Dholka in the Ahmedabad District of Gujarat. It was named Udayana-vihāra after his deceased father Udayana. Probably Udayana's family hailed from Dhavalakka.

A big eulogy in 104 Sanskrit stanzas was composed to commemorate the construction and consecreation of the Udayana-Vihāra by Rāmachandra-muni who was famous as the author of a hundred works and was one of the most prolific writers of the age. The poem was engraved on a big stone slab which was fixed into the wall of the Udayana-Vihāra at Dhavalakka.

No trace of the Udayana-vihāra has been discovered, though its history can be gathered from part of the stone slab bearing the eulogy composed by Rāmachandra, which has been recovered under strange circumstance.

The fragmentary inscription has been found on the back side of a slab of black granite stone, the front side of which was carved into an image of the god Vishṇu in high relief. The image is now worshipped in a temple at Dholka under the name of Raṇachhoḍajī. The original slab bearing the eulogy was cut into two parts at a later date for utilizing the left portion for carving out the Vishṇu image on the uninscribed backside of it.

A small inscription on the pedestal of the said image shows that the deity was installed in 1209 A.D. which falls in the reign of Bhīma II (1178-1241 A.D.) of the Soanki dynasty. The inscription on the original slab recording the construction of the Udayana-Vihāra must, of course, have been set up at an earlier date apparently before the death of Kumārapāla in 1173 A.D. It seems, therefore, that the Udayana-vihāra was destroyed in the period following Kumārapāla's death, when the Solankis were following an anti-Jain policy.

It is well known that, after his conversion to Jainism in 1159 A.D., Kumārapāla took up the doctrine of the sancity of animal life with such an extra-ordinary enthusiasm that he often inflicted exceptionally severe penalties on the violators of his rules. Thus a merchant who cracked a louse was punished by the confiscation of his property, the proceeds of which were utlised in building a jain temple. On another occasion, a person was put to death for outraging the sanctity of the capital city by bringing in a dish of raw meat.

A reaction to this harsh policy set in as early as the reign of Kumārapāla's successor Ajayapāla (1173-76 A.D.). Jain tradition informs us that the celebrated Rāmachandra-muni, author of the Udayana-vihāra eulogy, was involved in a plot of the Jain clergy to debar Ajayapāla from succeeding to the throne of the heirless Kumārapāla, because the prince was antagonistic towards the Jains and their faith. But Ajayapāla succeeded in getting the throne in spite of the opposition and did not wait to take revenge on the Jains. According to Merutuṅga, the new king put Rāmachandra-muni to death by seating him on a heated plate of copper in 1174 A.D.

Since Rāmachandra was no doubt a friend of Udayana's family, it is not unlikely that the Udayana-vihāra was destroyed during Ajayapāla's reign even though the slab bearing the eulogy composed by Rāmachandra was utilised for some other purpose a few years later.

Rāmachandra's small work on the Udayana-vihāra is worthy of the pen of that great Jain scholar and poet. It is written in a good style and contains valuable historical information. Unfortunately only a part of the interesting poem has been recovered. A vigorous search may lead to the discovery of the remaining part of the epigraph. For the portion of Rāmachandra's poem already published, the curious reader may consult ***Epigraphia Indica,*** Vol. XXXV,pp. 92-94.

(The late Dr. D.C. Sircar, M.A. Ph.D., PRS, FAS, FRAS, FRNS, was Carmichael Professor of Ancient Indian History and Culture, in the University of Calcutta. He was an undisputed authority on Ancient Indian Epigraphy. The *Select Inscriptions* is his monumental work. The instant article was published some time in 1930's. It gives interesting information about Gujrat in the 12th century A.D. - Dr. Shashi Kant)

विश्व शान्ति में *अनेकान्त* का योग

— डॉ. (श्रीमती) अनीता जैन
(एशोसियेट प्रोफेसर, संस्कृत, वनस्थली विद्यापीठ)

विश्व पटल पर अपनी पहचान बनाने वाला जैन धर्म विश्वजनीन और सार्वभौमिक धर्म है। सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से जैन धर्म का मूल्यांकन करने पर ज्ञात होता है कि यह धर्म सम्प्रदायवाद, जातिवाद, प्रान्तीयवाद आदि सभी मतभेदों से परे उदारवादी दृष्टिकोण का संवाहक धर्म है। जैन धर्म के चिन्तन ने एक ओर व्यक्ति को जहां पुरुषार्थी और स्वावलम्बी बनने की शिक्षा दी है, वहीं उसे सहिष्णु और निराग्रही होने का भी संदेश दिया है।

आज के युग की सबसे बड़ी समस्या है कि जीवन के प्रति हमारी दृष्टि सही नहीं है, विश्व की समस्याएं हमारी मिथ्यादृष्टि का ही परिणाम हैं। जैन तीर्थंकरों एवं साधकों के चिन्तन ने प्राणिमात्र के कल्याण एवं विकास हेतु कुछ सूत्र हमें प्रदान किये जिनकी प्रासंगिकता हम आधुनिक युग में भी देख सकते है।

अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह के सिद्धांत "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" के भाव पर आधारित ऐसे सिद्धान्त हैं, जिन्होंने परस्पर समन्वयवादी दृष्टिकोण को पुष्ट करने एवं सामुदायिक चेतना को जाग्रत करने का प्रयास किया है। जैन धर्म के अनेकान्तवाद के सिद्धांत ने आज विश्व को वह समाधान दिया है जो सभी स्तरों पर शांति स्थापित कर सकता है। विचारों की उदारता से ही व्यक्ति सत्य की तह तक पहुंच सकता है। विभिन्न दृष्टिकोणों को सम्मान देने से ही वचन कलह एवं मानसिक शत्रुता को दूर किया जा सकता है।

हम सभी जानते है कि वैचारिक मतभेद मानव की सृजनात्मक मानसिक शक्तियों का परिणाम होता है परन्तु इसको उचित रूप में न समझने से मानव के आपसी मतभेद संकुचित संघर्ष एवं सामाजिक विघटन के कारण बन जाते हैं। समाज के इस पक्ष को गहराई से समझकर भगवान महावीर ने एक ऐसे सिद्धांत की घोषणा की जिसमें मतभेद भी सत्य को देखने की दृष्टियां बन गईं। परिणामस्वरूप व्यक्ति समझने लगा कि मतभेद संघर्ष का कारण नहीं किन्तु विकास का द्योतक है। उक्त सिद्धान्त को समझाने वाले मनुष्य ने अपने क्षुद्र अहं को विगलित कर यह सोचना प्रारम्भ कर दिया कि उसकी अपनी दृष्टि ही सर्वोपरि न होकर दूसरे की दृष्टि भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। 'अनेकान्त योग' के सम्यक् पालन से

व्यक्ति सत्य के एक पक्ष की खोज कर समाज को गौरवान्वित कर सकता है। अनेकान्त समाज का गत्यात्मक सिद्धान्त है जो जीवन में वैचारिक गति को उत्पन्न करता है।

'अनेकान्त' शब्द में 'अनेक' और 'अन्त' इन दो शब्दों का संयोग दिखाई देता है। 'अन्त' शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ है – **अम्यते गम्यते निश्चीयते इति अन्तः धर्मः। न एकः अनेकः। अनेकश्चासौ अन्तश्च इति अनेकान्तः**[1] अर्थात् वस्तु में अनेक धर्मो के समूह को मानना अनेकान्त है।

अनेकान्तवाद की परिभाषा जैनाचार्य ने इस प्रकार दी है – **अनेके अन्ताः भावा अर्थाः सामान्यविशेष गुण पर्यायाः, यस्य सोऽनेकान्तः** अर्थात् जिसमें अनेक अर्थ, भाव, सामान्य, विशेष, गुण, पर्याय रूप से पाये जाएं वह अनेकान्त है। वाद का अर्थ है – सिद्धान्त, चिन्तन या कथनशैली। इस प्रकार अनेकान्त वाद का अर्थ हुआ – पदार्थ का भिन्न–भिन्न दृष्टियों/ अपेक्षाओं से पर्यालोचन करना।[2]

जात्यरन्तरभाव को अनेकान्त कहते हैं, अर्थात् (अनेक धर्मो या स्वादों के एकरसात्मक मिश्रण से जो जात्यन्तरपना या स्वाद उत्पन्न होता है, वही अनेकान्त शब्द का वाच्य है।[3]

समयसार के अनुसार – जो तत् है वही अतत् है, जो एक है वही अनेक है, जो सत् है वही असत् है, जो नित्य है वही अनित्य है, इस प्रकार एक वस्तु में वस्तुत्व की उपजानेवाली परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का प्रकाशित होना अनेकान्त है।

'अनेकान्त' के सिद्धान्त ने सत्य की खोज का जो द्वार हम सभी के लिए खोला है एवं साधना का पथ प्रस्तुत किया है – वह है ऋजुता, अनाग्रह। भगवान महावीर की दृष्टि में सत्य उसे उपलब्ध होता है जो ऋजु है – जो यथार्थ को अपने पूर्वग्रह के सांचे में ढालने का प्रयत्न नहीं करता।

अनेकान्त का प्रयोग दर्शन युग में प्रारम्भ हुआ। संभवतः सबसे पहले 'सिद्धसेन दिवाकर' ने इसका प्रयोग किया। अनेकान्त का मूल आधार नय है। आचार्य सिद्धसेन के अनुसार द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय परस्पर सापेक्ष हैं। इन दोनों के सापेक्ष होने का नाम है अनेकान्त। अनेकान्त द्रव्य और पर्याय की सापेक्षता का वाचक है। केवल द्रव्य और केवल पर्याय की सत्ता संभव नहीं है। सत् का स्वरूप ही अनेकान्तात्मक है। उसे समझने के लिए 'एकान्त' शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

अनेकान्त जैन धर्म की सत्य के प्रति निष्ठा का परिचायक है। सत्य का सही उद्घाटन भी तभी संभव है जब हम किसी वस्तु का स्वरूप कहते समय उसके अन्य पक्ष को भी ध्यान में रखें, और अपनी बात भी प्रामाणिकता से कहें। मकान, किताब, कपड़ा, सभा, संघ, देश आदि विश्व की सभी चीजें अनेकान्त ही हैं। अकेली ईटों या चूने–गारे का नाम मकान नहीं है, उनके मिलाप का नाम मकान है। आचार्य सिद्धसेन अपनी चौथी द्वात्रिंशिका में इसी बात को बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रतिपादित करते है–

उद्धावित सर्वसिन्धवः समुदीर्णास्त्वयि सर्वदृष्टयः।
न च तासु भवानुदीक्ष्यते प्रविक्तासु सरित्स्विवोदधिः।।

जिस प्रकार समस्त नदियां समुद्र में सम्मिलित हैं, उसीतरह समस्त दृष्टियां अनेकान्त रूपी समुद्र में मिली हैं। परन्तु उन एक एक में अनेकान्त दर्शन नहीं होता जैसे पृथक्–पृथक् नदियों में समुद्र नहीं दीखता।

अनेकान्त हमारे चिन्तन को निर्दोष बनाता है। निर्मल चिन्तन से निर्दोष भाव का व्यवहार होता है। सापेक्ष भाषा से व्यवहार में अहिंसा प्रकट होती है। अहिंसक वृत्ति से अनावश्यक संग्रह और किसी का शोषण नहीं हो सकता, जीवन अपरिग्रही हो जाता है। इस तरह आत्म शोधन का मूल मन्त्र है – अनेकान्त। जैनाचार्यो की दृष्टि में अनेकान्त के बिना लोक का कोई भी व्यवहार सम्भव नहीं है।

जेण बिना लोयस्स वि ववहारों सव्वहा न निव्वडई।
तस्स भवणेक्कगुरूणो णमो अणेगंतवायस्स।।4

भगवान महावीर कहते हैं कि बाहरी दृष्टि से संसार के जीव भांति–भांति के हैं, नाना प्रकार योग्यताएं हैं, किन्तु उनके स्वभाव में मौलिक अन्तर नहीं है। अतः किसी एक बात या दृष्टिकोण पर दुराग्रह मत करो। वचनों से मत लड़ो। केवल कहना ही नहीं, सुनना भी सीखो –

णाणा जीवा णाणाकमां णाणाविंह हवे लद्धी।
तम्हा व्यवविवादं सग पर समएहिं वज्जिज्जा।।5

अनेकान्त जैन दर्शन की समस्त दर्शन जगत को एक महत्वपूर्ण देन है। यह जैन दर्शन का मौलिक चिन्तन है, जिसमें विभिन्न धर्मो और दर्शनों में निहित सत्यों को स्वीकार कर उनमें परस्पर समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

अनेकान्तवाद वस्तु के व्यापक और सार्वभौमिक स्वरूप को जानने का वह प्रकार है जिसमें धर्म को जानते हुए भी अन्य धर्मो का निषेध नहीं किया जाता, उन्हें गौण या अविवक्षित नहीं कर दिया जाता है।

जैन दर्शन किसी भी पदार्थ को एकान्त नहीं मानता। यदि वस्तु में रहने वाले अनेकधर्मो में से किसी एक ही धर्म को लेकर उसका निरूपण किया जाए और उसी को सर्वांशतया सत्य मान लिया जाए तो यह विचार अपूर्ण और भ्रान्त होगा। उदाहरण के लिये – एक व्यक्ति पिता, पुत्र, भाई आदि भिन्न भिन्न संज्ञाओं से पुकारा जाता है, जिससे प्रतीत होता है कि उसमें पितृत्व, भ्रातृत्व आदि अनेक धर्मो की सत्ता विद्यमान है। जिस प्रकार भिन्न–भिन्न अपेक्षाओं से एक ही व्यक्ति में पितृत्व, पुत्रत्व आदि की कल्पना होती है। उनमें कोई विरोध नहीं माना जाता। उसी प्रकार एक ही वस्तु में नित्यानित्यादि अनेकान्त धर्म मानने में भी कोई विरोध नही है।[6]

अनेकान्तवाद वस्तु के यथार्थ स्वरूप की दृष्टि से चिन्तन विचार करने की वह शैली है जिसके द्वारा अपेक्षा भेद से वस्तु की अनन्तधर्मात्मकता का बोध हो सकता है।[7]

अहिंसा जैन धर्म का मूल आधार है। अहिंसा की चरम मानसिक सिद्धि 'अनेकान्त' है। महावीर स्वामी द्वारा पोषित 'अनेकान्त' प्रजातन्त्र की वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं और मतभेदों का समाधान प्रस्तुत करता है। आचार्य महाप्रज्ञ जी के अनुसार स्वतंत्रता, समानता, सापेक्षता, समन्वय और शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व – ये अनेकान्त के फलित हैं। अनेकान्तवाद का सिद्धान्त परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली अनेक वस्तुओं के बीच विरोध को समाप्त करके विश्वबन्धुत्व का आधार बनता है।

आज हर व्यक्ति, हर संगठन की स्वार्थपरक अपनी–अपनी मान्यताएं हैं जिसके बल पर मानव दूसरे के हित को गौण बना देता है। परिणामस्वरूप जातिवाद, सम्प्रदायवाद, असहिष्णुता आदि समस्याएं उत्पन्न होती हैं। इन समस्याओं के निराकरण एवं प्रजातांत्रिक मूल्यों के संरक्षण में 'अनेकान्तवाद' एक अमोघ अस्त्र है। यदि विश्व के सभी राष्ट्र शांति और सौहार्द पाना चाहते हैं तो उन्हें अहिंसा की प्रतिष्ठा का मापदण्ड अपनाकर परस्पर सहयोग और सह–अस्तित्व की मूलधारा 'अनेकान्त' से जुड़ना होगा। 'अनेकान्त' मूलतः सापेक्षता, समन्वय एवं 'सह अस्तित्व' पर आधारित है।

'सापेक्षता' के आधार पर विरोधी हितों में भी समन्वय स्थापित किया जा सकता है। हमें यह समझना होगा कि व्यक्ति, एक जाति, एक सम्प्रदाय दूसरे व्यक्ति, दूसरी जाति और दूसरे सम्प्रदाय से सापेक्ष होकर ही जी सकता है, निरपेक्ष होकर नहीं। अतः आज वर्ग–भेद और विरोधी हितों के सिद्धान्तों की सापेक्षता के संदर्भ में व्याख्या करना जरूरी है।

'समन्वय' सूत्र के माध्यम से भी भिन्न प्रतीत होने वाली दो वस्तु धर्मो में एकता की खोज की जा सकती है। 'सृष्टि संतुलन' (इकोलॉजी)

का सिद्धान्त समन्वय का ही सिद्धान्त है। यह 'समन्वय' ही सह–अस्तित्व की आधारभूमि बनता है। व्यक्ति और समाज दोनों में समन्वय साध कर यदि व्यवस्था, नियम और कानून बनाया जाए तो उसका अनुपालन सहज और व्यापक होगा। इसके लिए कहीं व्यक्ति को गौण और समाज को मुख्य, तो कहीं समाज को गौण और व्यक्ति को मुख्य, करना आवश्यक होता है।

अनेकान्त का तीसरा सूत्र है 'सह–अस्तित्व'। "यत् सत् तत् सप्रतिपक्षम्" के अनुसार जिसका अस्तित्व है उसका प्रतिपक्ष अवश्य है। नित्य–अनित्य, सदृश–विसदृश, भेद–अभेद परस्पर विरोधी हैं, परन्तु फिर भी इनमें सह अस्तित्व है। इसी प्रकार लोकतंत्र और अधिनायकवाद, पूंजीवाद और साम्यवाद ये भिन्न विचार वाली राजनैतिक प्रणालियां हैं, परन्तु एकान्तवाद के विनाश से इनमें भी सह–अस्त्तिव हो सकता है।

सह–अस्तित्व का सिद्धान्त सहिष्णुता और वैचारिक स्वतंत्रता का मूल्य स्वीकार करता है। यदि हम सबको अपनी रुचि, अपने विचार, अपनी जीवन प्रणाली में ढालने का प्रयत्न करेंगे तो वैचारिक स्वतंत्रता और सहिष्णुता जैसे जनतांत्रिक मूल्य अर्थहीन हो जायेंगे। अतः वर्तमान संदर्भ में समानता, विषमता, गरीबी, अमीरी, वर्ग संघर्ष ऐसे ज्वलन्त प्रश्न है, जिनका अनेकान्त की दृष्टि से समीक्षात्मक पर्यालोचन करना आवश्यक है।[8]

———————

1 रत्नप्रभसूरि : **रत्नाकरावतारिका** भाग–1, पृ. 89

2 मुनि श्री मोहनलाल शार्दूल : **'अनेकान्तवाद'**, **तुलसीप्रज्ञा**, खण्ड–8, अंक–4–6, पृ. 17

3 ***धवला*** 15.25.1

4–5 प्रो. प्रेम सुमन जैन : **जैन धर्म की सांस्कृतिक विरासत**

6 कथं विप्रतिषिद्धानां न विरोधः समुच्चये।
अपेक्षाभेदतो हन्त सै विप्रतिषिद्धता।।

7 अरुणा आनन्द : **पातञ्जल योग एवं जैन योग का तुलनात्मक अध्ययन**

8 आ.महाप्रज्ञ : **अनेकांत : सहअस्तित्व का दार्शनिक दृष्टिकोण**

———————

602, रामानुजन्, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली, (जि. टोंक) –304022

जीवन के मूल्य

- श्रीमती शेफाली मित्तल

अमन के जाने के बाद आंचल ने एक विद्यालय में अध्यापिका के पद पर कार्य करना शुरू कर दिया था। आखिर बच्चों का तो पालन–पोषण करना ही था। आज अपनी तीनों बेटियों की शादी करके आंचल अपने घर में बिल्कुल तनहां है। सदा से एक ही प्रश्न का उत्तर ढूंढती हुई उसकी निगाहें अतीत में जा ठहरती हैं।

आंचल अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. थी और घर–गृहस्थी के कार्यो में अति निपुण थी। उसका विवाह एक प्राइवेट कम्पनी में क्लर्क के पद पर कार्यरत अमन नामक व्यक्ति से हुआ था। अमन बहुत ही होशियार, कर्मठ और मृदु स्वभाव के व्यक्ति थे। उनके जीवन में कर्म सर्वोपरि था। पढ़ाई में रुचि होने के कारण कॉलेज के बाद वह ऊंची शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे किन्तु पारिवारिक परिस्थितियों के कारण वे आगे न पढ़ सके और बी.कॉम. करने के बाद एक छोटी नौकरी आरम्भ कर घर का कार्य–भार संभालने लगे। न केवल अपने विभाग में बल्कि अन्य विभागों में भी उनके कार्य–कौशल की तारीफ़ होती थी। वे कम्पनी के प्रत्येक विशिष्ट कार्य में अपना सहयोग प्रदान करते थे। किसी भी समस्या का समाधान वे बड़ी ही कुशलतापूर्वक कर दिया करते थे। कम्पनी के एम.डी. साहब सदैव उनकी प्रशंसा किया करते थे। कम्पनी में जब भी प्रमोशन की घोषणा होती, अमन बड़ी उम्मीद से अपने नाम की प्रतीक्षा किया करते, किन्तु हर बार मायूसी ही हाथ लगती। उनके बराबर की सीट पर बैठने वाला किशोर हर बार प्रमोशन लेता और प्रमोशन लेते–लेते वह जनरल मैनेजर के पद पर पहुंच गया था। किशोर के लिए जीवन के मूल्यों का कोई औचित्य नहीं था। काम करने में उसका कतई विश्वास नहीं था। उसके लिए चापलूसी से बढ़कर कोई काम नहीं था। वह अपनी सीट पर कम और एम.डी. साहब के केबिन में ज्यादा पाया जाता था।

चालीस वर्ष की उम्र में स्वयं को जहां से शुरू किया था वहीं पर पाकर अमन को बहुत तनाव रहने लगा। वे चिड़चिड़े हो गए। स्वयं को पीछे छूटता देख और चापलूसों को आगे बढ़ता हुआ देखकर कई बार अमन को अपने आप पर गुस्सा भी आता। यह भी मन में आता कि इतनी मेहनत करने से क्या फायदा है जब नतीजा अपने हक में आना ही नहीं है। किन्तु

स्वभाव विपरीत होने के कारण यह सारी सोच उन पर कभी हावी न हो पाती और वे स्वयं को बदल न पाते। आंचल से वे प्रत्येक बात शेयर करते थे। आंचल जानती थी कि आज के दौर में कर्मठ व्यक्ति को लोग बैल की तरह इस्तेमाल करते हैं क्योंकि दुनिया चापलूसों से भरी हुई है। सब अपना स्वार्थ पूरा करना चाहते हैं चाहे उससे दूसरे का नुकसान ही क्यों न हो। पति के स्वभाव को भली–भांति जानती थी वह इसीलिए कभी भी अमन से तर्क–वितर्क नहीं करती थी। अमन का ऑफिस के माहौल में दम घुटने लगा था। अक्सर ऐसा देखा गया है कि जब भी कोई व्यक्ति अपनी कार्य–कुशलता के कारण पहचाना जाने लगता है तो उसके साथी स्पर्धा के कारण उसकी जड़ें काटना शुरू कर देते हैं। ऐसा ही अमन के साथ हुआ। एक दिन अमन किसी फाइल को लेकर बहुत परेशान थे और उसी फाइल को लेकर उनकी अपने एम.डी. साहब से कुछ कहा–सुनी हो गई। अगले दिन यह जानते हुए भी कि अमन निर्दोष है उनके एम.डी. ने उन्हें इस्तीफा देने के लिए मजबूर कर दिया। उस दिन तो अमन जैसे टूट ही गए। उन्होंने घर आकर आंचल के लिए एक पत्र लिखा और उसे टेबिल पर रखकर बाहर निकल गए। काफी देर तक अमन के न आने पर आंचल परेशान सी इधर–उधर घूमने लगी। तभी उसकी नज़र खत पर पड़ी जिसमें लिखा था "मैं अपने जीवन से तंग आ चुका हूं। मुझमें और सहने व लड़ने की ताकत नहीं बची है। मैं कहा जा रहा हूं, मुझे स्वयं नहीं पता। मुझे ढूंढने की कोशिश मत करना"। खत पढ़ते ही आंचल के पैरों तले जमीन खिसक गई। वह वहीं बुत–सी खड़ी रह गई।

रह–रहकर उसके मन में एक ही प्रश्न उठ रहा था "क्या आज जीवन के मूल्य समाप्त हो गए हैं? क्या दुनिया में सिर्फ और सिर्फ स्वार्थ एवं चापलूसी सर्वोपरि है? कर्मठ व्यक्ति के लिए इस दुनिया में कोई स्थान नहीं है, क्या वह सच में बैल बनकर रह गया है?" गुज़रते वक्त के साथ अपने इस प्रश्न का उत्तर उसे शायद मिल गया है क्योंकि आज बीस वर्षो बाद भी उसका पति वापस नहीं आया। अपने मजबूत मनोबल से आंचल ने स्वयं को तो सम्भाला ही, वह दूसरों के लिए भी प्रेरणा बन गई।

ए–14, एल्डिको ईडन पार्क, नीमरांना–301705 (जि. अलवर, राज.)

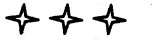

श्री महावीराष्टक स्तोत्र

(हिन्दी पद्यानुवाद)

— श्री निशान्त जैन 'निश्चल'

जिनके परम कैवल्य में चेतन–अचेतन द्रव्य सब,
उत्पाद–व्यय अरु ध्रौव्य युत झलकते हैं मुकुर सम।
जो जगत दृष्टा दिवाकर सम मुक्ति मार्ग प्रकट करें,
वे महावीर प्रभु हमारे नयनपथगामी बनें।।1।।

जिनके कमल सम हैं नयन दो, लालिमा से रहित हैं,
करते प्रकट अन्तर–बहिर, क्रोधादि से नहीं सहित हैं।
है मूर्ति जिनकी शान्तिमय, अति विमल जो मुद्रा धरें,
वे महावीर प्रभु हमारे नयनपथगामी बनें।।2।।

नमित इन्द्रों के मुकुट, मणियों के प्रभा समूह से,
शोभायमान चरणयुगल, लगते हैं जिनके कमल से।
संसार ज्वाला शांत करने हेतु जल सम जो बहें,
वे महावीर प्रभु हमारे नयनपथगामी बनें।।3।।

मुदित मन से चला जिनकी, अर्चना के भाव से,
तत्क्षण हुआ सम्पन्न मेंढक स्वर्ग सुख भण्डार से।
आश्चर्य क्यों? यदि भक्तजन नित मोक्षलक्ष्मी वरण करें,
वे महावीर प्रभु हमारे नयनपथगामी बनें।।4।।

तप्त कंचन प्रभा सम, तन रहित ज्ञान शरीर युत,
हैं विविधरुपी एक भी हैं अजन्मे सिद्धार्थ सुत।
हैं बाह्य–अंतर लक्ष्मी युत तदपि विरागी जो बने,
वे महावीर प्रभु हमारे नयनपथगामी बनें।।5।।

जिनकी वचनगंगा विविध नय युत लहर से निर्मला,
ज्ञानजल से नित्य नहलाती जनों को सर्वदा।
जो हंस सम विद्वत् जनों से निरन्तर परिचय करें,
वे महावीर प्रभु हमारे नयनपथगामी बनें।।6।।

जिसने हराया कामयोद्धा तीनलोकजयी महा,
अल्पायु में भी आत्मबल से वेग को निर्बल किया।
जो निराकुलता–शान्तिमय आनन्द राज्य प्रकट करें,
वे महावीर प्रभु हमारे नयनपथगामी बनें।।7।।

जो वैद्य हैं नित मोहरोगी जनों के उपचार को,
मंगलमयी निःस्वार्थ बन्धु विदित महिमा लोक को।
उत्तमगुणी जो शरण आगत साधुओं के भय हरें,
वे महावीर प्रभु हमारे नयनपथगामी बनें।।8।।
भागेन्दुकृत जो महावीराष्टक स्तोत्र पढ़ें–सुनें,
भक्तिमय वे भक्तिपूर्वक, परमगति निश्चय लहें।।

(कविवर भागेन्दु जी की संस्कृत में रचना 'महावीराष्टकस्तोत्रम्' अत्यंत लोकप्रिय है। इसका हिन्दी में पद्यानुवाद अभिनन्दनीय है। सम्पादक)

96, ठठेरवाड़ा, निकट सर्राफा बाजार, मेरठ शहर–250002

✧✧✧

परम अहिंसा धर्म

- श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'

मांसाहार न कीजिये, कहते ग्रन्थ पुकार।
परम अहिंसा धर्म है, करिये यही प्रचार।।
सुन्दर स्वास्थ्य निरोग हित अच्छा शाकाहार।
उदर न कब्रिस्तान है, यही तथ्य ले धार।।
करें भ्रूण–हत्या नहीं, अण्डे खाकर आप।
नहीं जीव हत्या सदृश, जग में कोई पाप।।
चील गृद्ध कौवे करें, मृत जीवों का भोग।
मांस बढ़ाता है वसा, दे शरीर को रोग।।
स्वास्थ्य चिकित्सक कह रहे, अच्छा शाकाहार।
इसे ग्रहण कर लीजिये, दीर्घ आयु उपहार।।
करते रहे सदैव से, सात्विक भोजन आर्य।
पीड़ा मिले न अन्य को, पुण्य भाव यह धार्य।।
परम अहिंसा धर्म शुचि, यह ऋषियों का शोध।
तज हिंसा सद्बुद्धि गह, यश लो कहें 'अबोध'।।

'चंद्रा–मण्डप', 370/27, हाता नूरबेग, संगमलाल वीथिका, सआदतगंज, लखनऊ–226003

✧✧✧

ऋषभ वंदना

- श्रीमती त्रिशला जैन शास्त्री

मां बतलाओ आदिनाथ क्यों पूजे जाते हैं।
ऐसा क्या कुछ किया कि वो भगवान कहाते हैं।।
मां बोली बेटा दुनिया में दो गुण जिसमें हों।
ज्ञान शक्ति का मिले समागम सच्चा ज्ञानी वो।।
ऋषभेश्वर ये नाम उन्हीं गुणशाली बालक का।
जन्म हुआ तब नाम रखा श्री ऋषभनाथ उनका।।
देख देख सुंदरता मां मरूदेवी मुदित हुई।
नाभिराज घर खुशियां छायी नभ से ध्वनि हुई।।
इंद्र लोग तब आये लेकर वस्त्राभूषण थे।
जो पहनाये शचि ने प्रभु को रत्नजड़ित थे वे।।
रूप सुहाना देख प्रभु का नेत्र हजार किए।
नृत्य किया सबने मिल ऐसा जय जयकार लिए।।
एक दिवस की घटना जब चंदा सूरज देखे।
घबड़ाकर जनता आई थी प्रभु से वे पूछे।।
घबड़ाओ मत कल्पवृक्ष की ज्योति पड़ी धीमी।
इच्छाएं जब बढ़ीं, लुप्त हो गई सभी वस्तुएं भी।।
असि मसि कृषि आदिक षट्किरिया उनको बतलाई।
कैसे अन्न उगाओ कैसे दूध गाय आदी।।
तभी से वे युग पुरुष आदि ब्रह्मा भी कहलाए।
सबको दे उपदेश अतः आदीश्वर कहलाए।।
नगर अयोध्या में जन्मे और जब वैराग्य हुआ।
जाके नगर प्रयाग में उनने मुनिव्रत धार लिया।।
एक बरष तक घूमे पर आहार विधी न मिली।
पहुंचे नगर हस्तिनापुर में तब भी मिली विधी।।
नृप श्रेयांस ने इक्षुरस से था आहार दिया।
अक्षय तृतीया पर्व तभी से जग में नाम किया।।
गिरी कैलाश शिखर से उनने मुक्ती प्राप्त करी।
आज बन गयी उनकी प्रतिमा मांगीतुंगी गिरी।।
दिव्य शक्ति माता जी की यह सारा जग कहता।
वरना जिनवर महाबिम्ब निर्माण न हो सकता।।
माताजी की शक्तिप्रेरिका बनी "चन्दनाजी"।
और रवीन्द्रकीर्तिस्वामी की कड़ी तपस्या भी।।
"रत्नत्रयसम" तीनों जग में बड़े पुण्यशाली।
"त्रिशला" का वंदना स्वीकारो हे महिमाधारी।।

(सिद्धक्षेत्र मांगीतुगी में 108 फुट ऊंची भ. ऋषभदेव की प्रतिमा के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, 11–17 फरवरी 2016, के अवसर पर प्रस्तुत।)

ऐशबाग रोड, नाका हिंडोला, लखनऊ–4

पराई पीर

- श्री अमरनाथ

देख पराई पीर को, क्यों न हुआ उदास?
कांटा चुभता पैर में, होता तब अहसास।।1।।
कभी पराई पीर को, किया न तू अहसास
फूटे अपना दर्द जब, करता किसकी आस?।।2।।
दीन दुखी निर्बल सता, क्यों नित भजता राम?
शायद तू ना जानता, निर्बल के बल राम ।।3।।
मन्दिर मस्जिद तीर्थ सब, चर्च और गुरुद्वार
सुनी पराई पीर ना, सब कुछ है बेकार।।4।।
प्रेयर, कीरत, आरती, पूजा और नमाज
गैर–दर्द बांटा नहीं, निष्फल सारे काज।।5।।
दीनों के हैं नाथ वो, वो ही दीनदयाल।.
दीनों की सेवा बिना, मत कर प्रभु का ख्याल।।6।।
दीन धर्म कहते यही, बांट दर्द तू दीन
पूजा, नमाज, है यही, खुश करतार, अदीन।।7।।
उसे कहां तू ढूंढता, है वो तेरे पास
सच्चे मन से जान तू, दीन दुखी की आस।।8।।
दीन दलित की पीर को, सांस–सांस अहसास
पाएगा तब शीघ्र ही, प्रभु को अपने पास।।9।।
तृष्णा, इच्छा, कामना, भोग, लालसा, चाह
देकर झूठा सुख सदा, खोलें दुख की राह।।10।।
सदा मान अभिमान का, झूठा मायाजाल
जैसे कस्तूरी हिरन, दौड़–दौड़ बेहाल।।11।।
ज्ञान, रूप, धन, बाहुबल, पाकर क्यों इतराय?
किया किसी का काम ना, व्यर्थ धरें रह जाय ।।12।।
अस्थि चर्म मय देह का, काहे करे गुमान?
माटी यह इक दिन मिले, महाप्रान में प्रान।।13।।
कर तन–मन उपयोग तू, परमारथ के काज
फूल बना माटी खिले, महके सकल समाज।।14।।
तन–मन–धन सब दीजिए पर–हित, पर–उपकार
सार यही नर देह का, यही मोक्ष आधार।।15।।

401–ए, उदयन–1, बंगला बाजार, लखनऊ–2

हृदयोद्‌गार

- श्रीमती सरिता अग्रवाल

सूनी अंखियां खोजें मां चहुंओर तेरा दर्शन,
करती हूं मां मैं तेरा सादर अभिनंदन, अभिनंदन।
तू थी मैया मेरी, क्या निवेदन करूं,
प्रेम निर्झर थी मां, कैसे अश्रुवर्षण करूं,
तू थी मैया मेरी, क्या वर्णन करूं।

हर आंधी झंझावात में तुम,
खड़ी अचल बन आलम्बन।
अति लाड़ किया, सम्मान किया,
न्यौछारा अपना तन–मन–धन।
तू थी मैया मेरी, क्या निवेदन करूं।

घर के कण–कण में अहसास तेरा समाया,
हर आहट पे लगता है मां तुमने बुलाया।
मन दुःख से भरा कैसे कीर्तन करूं,
तू है मैया मेरी क्या मैं वर्णन करूं।

चेतना में भी तुम, वेदना में भी तुम,
मां! मां! पुकारे तुझे दिल की हर धड़कन।
तू छुपी है कहां, कैसे ढूंढन करूं,
तू है मैया मेरी, क्या निवेदन करूं।

कर गया है अकेला, मुझे जाना तेरा,
कैसे संभालूं तेरे दिन ये व्याकुल मन बांवरा।
इस बिखरे मन से कैसे तेरा अभिनंदन करूं,
तू है मैया मेरी क्या निवेदन करूं।

बहु नहीं, थी मैं बेटी तेरी, तू सास नहीं, मां थी मेरी,
कैसा था वो नाता, अपनापन अटूट बंधन।
समझ नहीं आता कैसे करूं तेरा चरण वंदन,
तू थी मैया मेरी, यही बस निवेदन करूं।
यही बस निवेदन करूं।

(अपनी सास के चिरवियोग पर बहू सरिता ने अपने आत्मीय हृदयोद्‌गार व्यक्त किये हैं जो मर्मस्पशी हैं और आज के युग में सामान्यतः दीख नहीं पड़ते हैं। हमारी भी हार्दिक सम्वेदना है। – सम्पादक)

61–ए, पार्वती घोष लेन, कोलकाता–700007

"नमो" तुम चलते चलो

- श्री राजीव कान्त जैन
(चीफ सिग्नल एण्ड टेलीकॉम इंजीनियर, भारतीय रेलवे)

जन–मन में आस जगाने
देश में त्रास मिटाने
जनता ने दिया विश्वास
"नमो" तुम चलते चलो।

दृढ़ चित्त, ओज भरे
पग – पग बढ़ते चलो
अच्छे दिन दीख रहे
"नमो" तुम चलते चलो।

नेतृत्व में ईमान लिये
मूल्यों में मान लिये
प्रीत की रीत पर
"नमो" तुम चलते चलो।

सर्वधर्म समभाव लिये
कर्म योगी–सा करते चलो
सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय
"नमो" तुम चलते चलो।

शैशव खेले, स्कूल जाये
युवा हर, रोजगार पाये
अथक निरंतर तब तक
"नमो" तुम चलते चलो।

नहीं कोई भूखा सोये
सबके सर छत होये
लक्ष्य मिले उस पल
"नमो" तुम चलते चलो।

विकास की डगर पर
अब कोई अटक नहीं
नित्य सवासौ कोटि डग
"नमो" तुम चलते चलो।

शरीर का प्रत्येक कण
जीवन का प्रत्येक क्षण
जनसेवा में करते अर्पण
"नमो" तुम चलते चलो।

थम गया दौर जो
अब पुनः आयेगा वो
फिर उगेंगे 'स्वर्ण–पर'
"नमो" तुम चलते चलो।

✧✧✧

साहित्य क्षेत्र के तपस्वी : श्री सुरेश जी 'सरल'

- श्री सुरेश जैन (आई.ए.एस.)

'सन्त-जीवनी' के लेखक

"सन्त–जीवनी" का लेखन न सहज है, न आम, वह एक विशिष्ट लेखक की लेखनी से निःसृत साहित्यिक–अवदान है, जो वर्षो से वांछित था। यह वह साहित्य है, जो अत्यन्त विद्वान–पाठक के साथ–साथ, सामान्य–पाठक को, तुरन्त चाहिए था। सरल जी ने "सन्त–साहित्य" के सामानांतर सन्तों पर लिखे साहित्य से, "साहित्य–संसार" का बहुत बड़ा शून्य–क्षेत्र भर दिया है। उनका लेखन सौ प्रतिशत "अकेडमिक" तो है ही, सौ टंच खरा भी है, और शाश्वत भी।

उनकी पुस्तकों से साहित्य और सन्तों के अनावृत्त–संसार का एक बड़ा दृश्य सामने आ सका हैं एक विराट उद्देश्य की सार्थकता सिद्ध हो सकी है और एक अभिनव–साहित्य–लेखन की नूतन–धारा स्पष्ट हो सकी है। कोई विद्वान इस कार्य को दृष्टिपटल से ओझल नहीं कर सकता, उसका सम्यक्–अस्तित्व और प्रभाव स्वीकार करना ही होगा। डाक्ट्रेट (शोध) करने के कार्य से, यह 'सन्तों की कथा' का लेखन कम न कहा जायेगा, मौलिकता के अधिक करीब माना जायेगा, शाश्वत और सदाबहार। सन्तों और श्रावकों की आगामी पीढ़ियों के लिए ग्रन्थ प्रकाश–स्तम्भ कहे जायेगें। ग्रन्थों का अपना वजन और वजूद पृथक होगा। सौन्दर्य और वैभव भी। श्री सरल का सोच, नूतन आयाम की संरचना का "उद्घाटक" कहा जा सकता है। उनके सोद्देश्य, सार्थक और स्थायी महत्व के लेखन को जन–गण–मन का आदर और प्रेम भी भरपूर मिला है। गत सौ वर्षो में किसी एक ही लेखक ने 18 महान संतों की जीवनी लिख दी हो, कहीं सुनने को नहीं मिला, पर सरल जी ने 30 वर्षो तक सतत् श्रम और चिंतन कर, वह महान कार्य साकार कर दिया है। प्रत्येक ग्रंथ दौ–सौ पृष्ठ से ऊपर है और आधुनिक किन्तु आत्मिक–शिल्प की उच्चगरिमा से खिला हुआ है। हरेक के तेवर और भावभूमि पृथक–पृथक हैं। हर 'जीवनी–ग्रन्थ' को संबंधित सन्तों द्वारा वात्सल्य भी दिया गया है। कल्पना और यथार्थ के तथ्यों को प्रामाणिकता का सुखद रूप देकर कथा रचने की महान कला से सरल जी ने साहित्य का भंडार सम्पन्न किया है।

विभिन्न विधाओं के महारथी

सरल जी सन् 1960 से लगातार लिख रहे हैं। उनकी सबसे बड़ी महारत है कि वे हर विधा पर सार्थक लेखन कर लेते हैं – कथा–कहानी, कविता, लेख, व्यंग्य आदि।

जैन पत्र–पत्रिकाओं के संसार में चलें, तो ज्ञात होगा सरल जी सभी पत्रों में सन् 1965 से आदर सहित विराजमान हैं। देश के अधिकतर पत्र उन्हें छापते रहे हैं। स्थानीय अखबारों से लेकर राष्ट्रीय स्तर के पत्र–पत्रिकाओं के पन्नों पर सरल जी के शब्दचित्र धूम मचाते रहे हैं – सा. धर्मयुग, मासिक कादम्बिनी, मासिक नवनीत, मासिक राष्ट्रधर्म आदि प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में देश के इने–गिने रचनाधर्मी ही स्थान पा सके हैं, मगर श्री सरल का नाम गौरव से लिया जाता है।

अभी तक उनके तीन सौ लेख, सौ कथा–कहानियां और शताधिक कविताएं अखबारों पर चमक बिखरा चुके हैं। इस विचारक और कर्मठ रचनाधर्मी के 142 शहरों में जैन–समाज और इतर. समाज द्वारा नागरिक–अभिनंदन' किये गये हैं। 14 बार राष्ट्रस्तरीय पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

उनके लेख व चिंतन आकाशवाणी से आते हैं, यह क्रम भी पुराना है, सन् 1962 से लोग उनकी आवाज आकाशवाणी पर सुन रहे हैं।

शिल्प–मर्मज्ञ

आश्चर्यजनक सत्य है कि सरल जी की भाषा में चमत्कार उत्पन्न करने वाले शब्दों का अभाव और रस–अलंकारों का बिलगाव होते हुए भी, जाने उसमें कौन सा रसायन घुला है कि वह हर पृष्ठ पर अधिक नवीन और अधिक रुचिकर होती जाती है, जिससे पाठक पढ़ना नहीं रोक पाता। सरल जी "शास्त्रीय–भाषा" को भी स्पर्श नहीं करते, फिर भी उनकी "भाषा का शास्त्र" पाठकों के मन–मस्तिष्क में आत्मिक–शीतलता की अदृश्य वर्षा करता रहता है। सच, वे जितने बड़े लेखक हैं, उतने ही महान शिल्प–मर्मज्ञ भी।

आत्मा में उतरने वाला कवि

सन् 1970–80 का दशक श्री सरल के लिए 'कवि–सम्मेलन का युग' था। वे कवि–सम्मेलनों के अखिल–भारतीय मंचों पर सफलता पूर्वक रचनाएं सुनाते रहे हैं और यश पाते रहे हैं। चालीस हजार श्रोताओं की भीड़ में तत्कालीन मंच के दिग्गज–कवियों के मध्य, श्री सरल अपनी गरिमा की पृथक छाप छोड़ने में साफल्य भी पा सके हैं। खासतौर से पाटन,पटना, हस्तिनापुर, श्री महावीर जी, जबलपुर, रायपुर, बम्बई, कलकत्ता, सतना, नैनपुर, शिखरजी, लखनादौन, सोनागिरि, कुण्डलपुर, रांची, अयोध्या, लखनऊ, सिरोंज, सागर, दलपतपुर, गोटेगांव, करेली, नरसिंहपुर, मेरठ, खुरई, हजारीबाग, झूमरी तलैया, कैमोर, दमोह, फतेहपुर आदि ऐतिहासिक–मंचों पर उनका

काव्य–पाठ ऊंचाई के नये आयाम गढ़ चुका है।

9 अगस्त 1942 को जबलपुर में जन्म लेने वाले सरल जी के पिता स्व. श्री फदालीलाल जैन एवं माता स्व. फूलमती बाई जैन ने बड़े नाज–नखरों के साथ उनका लालन–पालन किया था और उत्तम संस्कार तथा वांछित शिक्षा प्रदान की थी। सौभाग्य से सरल जी की जीवन–संगनी स्व. श्रीमती पुष्पा जैन सरल (क्षमारानी) उनसे भी अधिक सरल और धर्मप्राण थीं, 41 साल तक वे छाया बन कर रहीं। अब सरल जी की मनःपुस्तिका पर पढ़ी जा सकती हैं।

तीस अन्य ग्रंथ लिखने वाले सरल जी की बहुमुखी–प्रतिभा का लेखन यहां संभव नही है। अतः इस ग्रंथकार के निमित्त भी एक पुस्तक लिखनी पड़ जाये तो आश्चर्य नहीं है, क्योंकि वे शौक से लेखक नहीं हैं, वे अपनी दर्शन, ज्ञान और चर्या से लेखक हैं। वे लेखक बने नहीं हैं। 'पैदाईशी–लेखक' हैं, तभी तो इंजीनियर होते हुए भी साहित्यकार का ठोस जीवन जीते हैं। उनका साहित्य जीवन्त है और वे जीवट के साहित्य साधक हैं। अपनी हर कृति को बहुत ही सरल भाषा का अनमोल शिल्प जुटाने में सिद्ध हैं। भाषा सरल है मगर चिन्तन गूढ़। कल्पना–शक्ति अत्यंत ऊर्जावान और सक्रिय है। गत तीस वर्षो से वे मौन साहित्यकार कहे जाते हैं, सभा–संस्था–गोष्ठी–सम्मेलन से दूर, शांति से लेखन में प्रवृत्त रहते हैं। **न काहू से दोस्ती ना काहू से बैर** – उनका जीवन का मूलमंत्र है।

और अंत में यह भी बतला दूं कि देश के महान संतों, संस्थानों और आयोजनों की प्रेरणा से सरल जी को अनेक अलंकरण और उपाधियां समय–समय पंर प्रदान किए गये हैं, यथा – साहित्य–कुमुद–चंद्र, साहित्य–रत्नाकर, साहित्य–शिरोमणी, कथाकार–किरीट, साहित्य–मनीषी आदि–आदि। मैं उन्हें 'तपस्वी–साहित्यकार' मानता हूं जो सारे जीवन सुखों और सम्पत्तियों से स्वयं दूरी बनाए रहे और कलम को गति प्रदान करते रहे हैं। जैन तीर्थ नैनागिरि में विराजमान भगवान पार्श्वनाथ से 9 अगस्त को पचहत्तरवें वर्ष में प्रवेश के अवसर पर उनके स्वस्थ और दीर्घ जीवन के लिए प्रार्थना करता हूं।

(**शोधादर्श** परिवार भी श्री 'सरल' जी को अपनी शुभ कामना प्रेषित करता है। – सम्पादक)

30, निशात कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)–462003

डॉ. ज्योति प्रसाद जैन 'विद्यावारिधि'

- श्री मगन लाल जैन

'विद्यावारिधि' डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की जन्मशती (6–2–2012) के अवसर पर मैं अवसाद में होने के कारण कुछ नहीं लिख सका। अब मैं पूर्णतयाः स्वस्थ हूं और पिता तुल्य डॉ. साहब के विषय में कुछ लिखने को मन कर रहा है।

वर्ष 1960 की बात है। मैं लखनऊ में नया नया आया था। मैं 395/22 काश्मीरी मोहल्ला, शर्गा पार्क के बगल में किराये पर रहता था। मैं चौक के मंदिर में दर्शन पूजन करने आया करता था। वहां के जैन बन्धुओं से मेरा परिचय हो गया।

चौक में पुरानी सब्जी मण्डी में श्रवण आयल मिल के स्वामी स्व. श्री अजित प्रसाद जैन 'बब्बे जी' रहते थे। उनके घर पर शनिवार को सायंकाल डॉ. ज्योति प्रसाद जैन शास्त्र प्रवचन करने आया करते थे। सभी साधर्मी बन्धुओं के साथ शास्त्र सभा में उपस्थित होने पर मुझे भी भगवान की वाणी सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ करता था। बब्बे जी के पुत्र के निधन के बाद और उनके स्वयं अस्वस्थ हो जाने पर सायंकाल की वह गोष्ठी बन्द हो गयी।

डॉ. साहब से मेरा परिचय चौक में ही हुआ था, और यह परिचय इतना बढ़ गया कि मेरा उनके घर चारबाग आना जाना शुरू हो गया। मेरा कार्यालय बासमण्डी चौराहा, चारबाग, में था। मैं अक्सर दोपहर में उनके पास कुछ सीखने की दृष्टि से चला जाया करता था। स्वाध्याय गोष्ठी उनके घर पर सायंकाल शनिवार को होने लगी थी। इस गोष्ठी में मेरी भेंट डॉ. शशि कान्त एवं स्व. रमा कान्त से हो गयी। डॉ. शशि कान्त और रमा कान्त राम–लक्ष्मण की भांति भाई लगते थे, सायंकाल सचिवालय से एक साथ आते थे और गोष्ठी में सम्मलित होते थे।

डॉ. साहब के परिवार से शास्त्र गोष्ठी में जाने के फलस्वरूप घनिष्ठता बढ़ गयी। मैं वर्ष 1993 में सरकारी सेवा से सेवानिवृत्त हुआ था और रमा कान्त एक वर्ष उपरांत वर्ष 1994 में सेवानिवृत्त हुए थे। कुछ समय उपरांत मुझे अपने पुराने मित्रों से व्यक्तिगत रूप से मिलने की इच्छा हुयी। मैं एक दिन श्री रमा कान्त से मिलने उनके निवास पर गया था।

हम लोगों की मुलाकात हुई, उनका कवि हृदय मैं कभी भूल नहीं सकता हूं। अभी भी डॉ. शशि कान्त से मेरी प्रायः टेलीफोन से बात होती रहती है।

मैं डॉ. ज्योति प्रसाद जैन को चारबाग में उनके कमरे में तख्त पर बैठे या विश्राम करते देखता था, तो मुझे अपने पिता जी की याद आ जाया करती थी, यद्यपि मेरे पिता इतने पढ़े लिखे नहीं थे किन्तु जैन धर्म उनमें कूट–कूट कर भरा हुआ था।

श्री धर्मवीर जी मुझे बताया करते हैं कि जब वे पी.डब्लू.डी. के अन्वेषण विभाग में थे तो डॉ. साहब गजेटियर आफिस में कार्यरत थे। दोनों का आफिस एक ही भवन मे था। श्री धर्मवीर जी दोपहर में लंच के समय डॉ. साहब के कार्यालय में आकर **छहढाला** का स्वाध्याय किया करते थे। डॉ. साहब का शास्त्र को समझाने का बहुत ही सरल तरीका था।

डॉ. ज्योति प्रसाद जी की एक–एक प्रकरण की स्मृतियां मेरे मनस्पटल पर अभी भी घूमती रहती हैं। मैंने धर्म के सम्बन्ध में जितना भी जाना है यह सब उन्हीं की देन है। उनके पुत्रों डॉ. शशि कान्त एवं स्व. रमा कान्त में भी यह सब संस्कार हैं। मुझे गर्व है कि मेरी घनिष्ठता ऐसे परिवार से है। डॉ. साहब का, उनके अनुज स्व. श्री अजित प्रसाद जैन का एवं कनिष्ठ पुत्र स्व. रमा कान्त का जीव जहां भी हो, उन्हें मेरा शत–शत प्रणाम, वन्दन, वन्दन!

4/153, विशेष खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ–226010

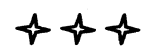

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ0प्र0
प्रतिवेदन वर्ष 2015-16

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, का गठन सन् 1976 ई0 में 24वें तीर्थंकर भगवान वर्धमान महावीर स्वामी का 2500वां निर्वाण महोत्सव वर्ष मनाने के लिए राज्य सरकार द्वारा गठित **श्री महावीर निर्वाण समिति, उ0प्र0,** की उत्तराधिकारी संस्था के रूप में जैन धर्म की सभी आम्नायों के महानुभावों के सहयोग से किया गया था तथा गठन के तुरन्त बाद ही उसे सोसायटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड करा लिया गया था जिसका नियमानुसार नवीनीकरण यथासमय कराया जाता है।

समिति का वर्ष 2014–15 का प्रतिवेदन **शोधादर्श–81** (जून, 2015) के पृष्ठ 44–47 पर प्रकाशित है। यहां वर्ष 2015–16 (1 अप्रैल, 2015 से 31 मार्च, 2016) का प्रतिवेदन प्रस्तुत है।

आलोच्य वर्ष में समिति की प्रवृत्तियों की प्रगति निम्नवत रही :–

1 तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र शोध पुस्तकालय

पुस्तकालय की स्थापना वर्ष 1976 की श्रुत पंचमी को की गई थी और इसका विधिवत उद्घाटन 23 अक्टूबर, 1976, को प्रदेश के तत्कालीन ग्राम्य विकास मंत्री माननीय डॉ. रामजीलाल सहायक के कर कमलों से सम्पन्न हुआ था। पुस्तकालय और उससे संलग्न वाचनालय श्री मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला ट्रस्ट, चारबाग, लखनऊ द्वारा धर्मशाला के प्रथम तल पर उपलब्ध कराये गये एक कक्ष में प्रारंभ किया गया था, जो मई 2001 से धर्मशाला के द्वारा भूतल पर किराये पर उपलब्ध कराये गये दो कक्षों में चल रहा है।

समिति के सदस्यों के अतिरिक्त पुस्तकालय के सदस्य भी हैं जिनकी संख्या इस वर्ष 34 रही। लखनऊ में चारबाग ही नहीं वरन् आसपास की कॉलोनियों के जैन परिवार तथा अनेक जैनेतर जिज्ञासु महानुभाव भी पुस्तकालय के सदस्य हैं। कुछ सदस्य लखनऊ के बाहर के भी हैं।

पुस्तकालय में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति आदि के अध्ययन हेतु जैन धर्म की सभी आम्नायों का साहित्य तथा शोधार्थियों द्वारा तुलनात्मक अध्ययन के लिए अन्य भारतीय धर्मो, दर्शनों एवं संस्कृति से सम्बन्धित

महत्वपूर्ण साहित्य संग्रहीत है। अपने विशिष्ट संकलन के लिये इन विषयों के शोधार्थी पाठकों में यह पुस्तकालय विशेष लोकप्रिय है तथा लखनऊ, कानपुर व अन्य विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध शोध छात्र इससे लाभ उठाते हैं। सामान्य रुचि के पाठकों के लिए लौकिक एवं सामान्य ज्ञानवर्धक साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

वर्ष 2015–16 में पुस्तकालय में 200 पुस्तकों की वृद्धि हुई। राजा राममोहनराय पुस्तकालय प्रतिष्ठान कोलकाता से प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग (पुस्तकालय कोष्ठक) के माध्यम से पुस्तक अनुदान के रूप में 160 पुस्तकें प्राप्त हुई। शेष 40 पुस्तकें भेंट स्वरूप प्राप्त हुई।

शोध पुस्तकालय के वाचनालय में प्रायः 100 धार्मिक, सामाजिक, सामयिक एवं शोध पत्र–पत्रिकाएं (साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, चातुर्मासिक, षट्मासिक और वार्षिक) समिति की शोध–पत्रिका **शोधादर्श** के परावर्तन में प्राप्त होती हैं।

पुस्तकालय–वाचनालय से प्रतिदिन प्रायः 50 पाठक लाभ उठाते हैं। पुस्तकालय–वाचनालय का समय प्रातः 10.00 से अपराह्न 2.00 बजे तक है। शनिवार और सार्वजनिक अवकाश पर पुस्तकालय–वाचनालय बन्द रहता है।

पुस्तकालय–वाचनालय का कार्य पूर्ववत पुस्तकालय व्यवस्थापिका श्रीमती हेमा सक्सेना, एम0ए0, द्वारा सुचारु रूप से देखा जाता रहा।

2 शोधादर्श

जैन विद्या की शोध को समर्पित शोध–पत्रिका **'शोधादर्श'** का प्रकाशन फरवरी 1986 में समिति द्वारा प्रथम अंक के प्रकाशन से प्रारंभ किया गया था। इसके आद्य–सम्पादक इतिहास–मनीषी विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन थे। जून 1988 में उनके स्वर्गवास के उपरान्त अंक 7 से प्रधान सम्पादक के दायित्व का निर्वहन डॉ. शशि कान्त ने किया। अंक 30 (नवम्बर 1996) से अंक 56 तक प्रधान सम्पादक के कार्यभार का सम्पादन श्री अजित प्रसाद जैन ने किया। उनके निधन के उपरान्त अंक 57 (नवम्बर 2005) से अंक 67 (मार्च 2009) तक श्री रमा कान्त जैन ने इसके सम्पादन के दायित्व का निर्वहन किया।

अंक 68 (नवम्बर 2009) से **शोधादर्श** के सम्पादन का दायित्व मेरे द्वारा निर्वहन किया जा रहा है।

जून 2015 और दिसम्बर 2015 में **शोधादर्श** के **क्रमशः** अंक 81 और 82 प्रकाशित हुए। इनमें 150 पृष्ठों की ज्ञानप्रद व उपयोगी संग्रहणीय

सामग्री और चित्र प्रकाशित हैं। अंक 81 में अयोध्या पर और अंक 82 में कुन्दकुन्दाचार्य पर विशेष लेख प्रकाशित हैं। उपरोक्त विशिष्ट सामग्री के अतिरिक्त पत्रिका के सामान्य स्तम्भ भी सम्मिलित रहे। पत्रिका की लोकप्रियता में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है तथा आज यह पत्रिका देश की उच्च स्तरीय धार्मिक–सांस्कृतिक शोध–पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

6 दिसम्बर 2015 को कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली, में अहिंसा इण्टरनेशनल द्वारा इतिहास, कला, साहित्य और संस्कृति से सम्बन्धित पंथ–निरपेक्ष शोधपरक आलेखों के प्रकाशन के लिए एवं उसमें सामाजिक समस्याओं के तर्क संगत समाधान, प्रबुद्ध पाठकों के अभिमत और रचनात्मक समालोचनाओं को भी निरन्तर प्रकाशित किये जाने के लिए इसके **सम्पादक** को जैन पत्रिकारिता के क्षेत्र में सफल योगदान के लिए **अहिंसा इंटरनेशनल विजय कुमार, प्रबोध कुमार, सुबोध कुमार जैन पुरस्कार** से सम्मानित किया गया। यह सम्मान इस पत्रिका के महत्व को रेखांकित करता है।

3 तीर्थंकर छात्र सहायता कोष

इस वर्ष आर्थिक दृष्टि से निर्बल 50 विद्यार्थियों (09 छात्रा और 41 छात्र) को अध्ययन जारी रखने हेतु आंशिक सहायता प्रदान करने पर रु. 51,235/– का व्यय किया गया।

4 लेखे की स्थिति

समिति के लेखे का आडिट इस वर्ष भी श्री आलोक जिन्दल, चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट, द्वारा किया गया और उनके माध्यम से आयकर कार्यालय को आवश्यक विवरणी यथासमय प्रस्तुत की जायगी।

शासन से प्राप्त पुस्तक अनुदान तथा कतिपय दातारों से भेंट स्वरूप प्राप्त साहित्य के अतिरिक्त कुल प्राप्तियां वर्ष में रु0 2,16,089.37 रहीं (इसमें रु0 300/– पुस्तकालय सिक्योरिटी राशि भी है जो रिफन्डेबिल है) तथा व्यय रु. 1,45,486.00 हुआ। फिक्स डिपॉज़िट निवेशों में रु. 1,00,000/– की वृद्धि कर दी गई। प्राप्ति–व्यय की विवरण तालिका संलग्न है। इसमें पुस्तकालय–वाचनालय का मासिक किराया सम्मिलित नहीं है क्योंकि उसका समायोजन श्री मुन्ने लाल कागजी जैन धर्मशाला ट्रस्ट को दी गई अग्रिम धनराशि से होता है।

मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला ट्रस्ट को दी गई अग्रिम किराये की अवशेष राशि रु. 1,28,000/– में से वर्ष 2015–16 में रु. 1600/– की दर से रु. 19,200/– की धनराशि मासिक किराये के रूप में समायोजित की गई, और अग्रिम किराये की राशि रु. 1,08,800/– अवशेष रही।

5 अन्य प्रवृत्तियां

वित्तीय वर्ष 2014–15 (असेसमेन्ट वर्ष 2015–16) का इन्कम टैक्स रिटर्न यथासमय जमा कर दिया गया। आयकर विभाग द्वारा आपत्ति के दृष्टिगत प्रकरण का रैक्टीफिकेशन किये जाने की कार्यवाही आडीटर श्री आलोक जिन्दल द्वारा की जा रही है।

रजिस्ट्रार, सोसायटीज, उ0प्र0, लखनऊ, को यथावश्यक सूचना प्रेषित की जाती रहीं। रजिस्ट्रेशन के आगामी 5 वर्षो के लिए नवीकरण हेतु आवश्यक आवेदन प्रस्तुत कर दिया गया है।

6 सन्ताप

समिति के 2 आजीवन सदस्य – 95–वर्षीय श्री कैलाश चन्द जैन का 6 जनवरी, 2016, को मुम्बई में और 85–वर्षीय श्री धनेन्द्र कुमार जैन का 24 जनवरी, 2016, को लखनऊ में चिर वियोग हो गया। उनका मार्ग दर्शन सदैव प्रेरणादायी रहता था, उसकी स्मृति सदा बनी रहेगी।

7 अन्तिम

विगत वर्ष 2015–16 की सभी प्रवृत्तियों के सम्पादन में मुझे समिति के अध्यक्ष श्री लूणकरण नाहर जैन का तथा प्रबन्ध समिति के सभी माननीय सदस्यों का सक्रिय सहयोग एवं मार्गदर्शन निरंतर उपलब्ध रहा। **शोधादर्श** का सम्पादन डॉ. शशि कान्त के मार्गदर्शन में व्यवस्थित किया जाता रहा।

सभी क्रियाकलापों में समिति के माननीय सदस्यों का सौहार्दपूर्ण सहयोग प्राप्त रहा। इन सभी महानुभावों के प्रति आभार व्यक्त करना मेरा व्यक्तिगत और नैतिक दायित्व है।

नलिन कान्त जैन
महामंत्री

25–6–2016

TIRTHANKAR MAHAVIR SMRITI KENDRA SAMITI, U.P.
Statement of Receipts & Payments for the Year ending 31st March, 2016

RECEIPTS		Rs. P.	PAYMENTS		Rs. P.
Balance b/d:			**Research Library:**		
F.D.R.s.	22,65,000.00		Salary Libr. Asstt.	55,000.00	
Savings Bank	1,74,896.42		Salary Cleaner	3,280.00	
Cash in Hand	935.00	24,40,831.42	Contingencies	687.00	58,967.00
Research Library:			**Shodhadarsh Magazine:**		
Security Deposit	300.00		Stationery & Prtg.	24,772.00	
Subscription	800.00		Dispatch Postage	2,690.00	27,462.00
Misc. Receipts	305.00	1,405.00			
Shodhadarsh Magazine:			Stationery		316.00
Subscription	2,670.00		Postage		906.00
Donation	5,401.00	8,071.00	T.C.S. Kosh Scholarship Exp.		51,235.00
			I.T. Counsel's & Audit Fee		5,500.00
Interest on F.D.Rs.		2,01,006.37	Registration Renewal		1,100.00
Interest on Savings Bank		5,607.00			
			Balance c/f:		
			F.D.Rs.	23,65,000.00	
			Savings Bank	1,34,925.79	
			Cash in Hand	11,509.00	25,11,434.79
		26,56,920.79			26,56,920.79

Compiled on the basis of information and explanations furnished.

For Avanish K. Rastogi & Associates
Chartered Accountants
Alok Jindal
Partner

समिति के सदस्यों का चिरवियोग

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, के तीन आजीवन सदस्यों का इस छमाही में चिरवियोग हो गया।

श्री कैलाश चंद जैन

92–वर्षीय श्री कैलाश चंद जैन का बुधवार दिनांक 6 जनवरी 2016 को मुम्बई में प्रवास के दौरान शरीर शांत हो गया। उनका सहयोग समिति के लिए विशेष महत्व रखता था। वे कोलकाता की एशियाटिक सोसायटी और संस्कृत साहित्य परिषद जैसी विभिन्न सांस्कृतिक संस्थाओं से जुड़े हुये थे। कोलकाता में दिगम्बर जैन मानस्तम्भ निर्माण समिति के वे मंत्री रहे थे। टेलीकॉम इन्जीनियरिंग सर्विसेज़ में एक अधिकारी के रूप में उन्होंने अपना योगदान किया था और एक साहसिक अधिकारी के रूप में उनकी प्रतिष्ठा थी। 1981 में सेवानिवृत्ति के उपरांत वे विशेष रूप से सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में संलग्न रहे। **शोधादर्श** के वे विशेष प्रशंसक थे और प्रेरणास्रोत भी थे।

श्री धनेन्द्र कुमार जैन

84–वर्षीय श्री धनेन्द्र कुमार जैन का लखनऊ में रविवार दिनांक 24 जनवरी 2016 को महाप्रयाण हो गया। वे समिति की प्रबन्ध समिति के सदस्य रहे थे और उनका परामर्श एवं सहयोग समिति के कार्यकलापों को निष्पादित करने में सहायक होता था। वह विगत दो वर्ष से अस्वस्थ चल रहे थे तथापि एक सुश्रावक के रूप में वे अपने नैमित्तिक धार्मिक कार्य का संपादन करते रहे थे। आशियाना में दिगम्बर जैन मंदिर के निर्माण में उनकी विशेष भूमिका रही थी। वह एक स्वाभिमानी और सफल व्यवसायी थे तथा सामाजिक और धार्मिक कार्यो में सदैव सक्रिय रहते थे।

श्री महेन्द्र प्रसाद जैन

77–वर्षीय श्री महेन्द्र प्रसाद जैन का शनिवार दिनांक 21 मई 2016 को मुम्बई में शरीर शांत हो गया। वह विगत ढाई साल से गुर्दे की व्याधि से पीड़ित थे और डायलिसिस पर चल रहे थे। वह समिति की प्रबन्ध समिति में उपाध्यक्ष थे और उनका परामर्श एवं सहयोग समिति के कार्यकलापों को निष्पादित करने में विशेष रूप से सहायक होता था। वह उत्तर प्रदेश वित्त सेवा के अधिकारी रहे थे और अपनी सत्यनिष्ठा एवं कर्तव्य–परायणता के लिए विशेष रूप से ख्याति प्राप्त थे। उनके निधन से समिति का एक प्रेरणा स्तम्भ विलीन हो गया।

नलिन कान्त जैन
महामंत्री

✧✧✧

साहित्य सत्कार

डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल की कृतियां :

1 मूलआम्नाय निबन्धावली-1 :

इस पुस्तक मे डॉ. राजेन्द्र कुमार बसल के मूलआम्नाय से सम्बन्धित 47 लेखों का संकलन है। ये लेख 2007 से 2015 तक विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। एक परिशिष्ट में डॉ. बंसल द्वारा सांस्कृतिक संरक्षण के क्षेत्र में किये गये विशिष्ट योगदान का विवरण है। अपने "मनोगत" में डॉ. बंसल ने इन लेखों के लिखने के आधारभूत विषय–विवेचन का निर्देश किया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि "इस निबंधावली का उद्देश्य किसी की आलोचना, प्रतिकार न होकर मूल आम्नाय अवधारणा, परम्परा का प्रकाशन है, जिससे सुधीजन सदमार्ग–जिनेन्द्रदेव–शास्त्र गुरु को पहचान–श्रद्धान कर उचित/प्रासुक विधि से पूजा अर्चना कर उनके मार्ग के पथिक बनें।" विचारणा में प्रेरक के रूप में उन्होंने हमारा उल्लेख भी किया है, जिसके लिए हम आभारी हैं।

शोधादर्श–82 में प्रकाशित उनका लेख "मुनि राम सिंह की दृष्टि में शुद्धात्म शिव और शिव पूजन की अहिंसक सामग्री" भी डॉ. बंसल के अभिप्राय को रेखांकित करता है।

समन्वय वाणी के 16–30जून 2016 के मूलाम्नाय विशेषांक में डॉ. बंसल ने वर्तमान परिस्थितियों में मूलआम्नाय की सुरक्षा हेतु विशद विवेचन किया है।

2 पंचामृत एवं स्त्री अभिषेक आगम सम्मत नहीं :

अपने "मनोगत" में डॉ. बंसल ने यह उद्बोधन किया है कि अवीतरागी देवपूजा और पंचामृत स्त्री अभिषेक की अप्रयोजन भूत कियाओं से बचें। उनका यह कथन चिंतनीय है कि पंथपोषक छद्मवेशी मुनिराजों, महासभा पोषित विद्वानों एवं अवसरवादी क्षेत्रीय विद्वानों द्वारा जैन समाज में आराध्य देव अभिषेक पद्धति आदि के सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न किया जा रहा है। उससे भी अधिक यह है कि धर्म की आराधना को अर्थ संचय का सफल उपाय बनाया जा रहा है और ऐसी प्रतीति होती है कि धर्म के नाम से जो विशाल आयोजन किये जाते हैं वे धर्मवृद्धि नहीं वरन् अर्थवृद्धि के साधन होते हैं। मूल आम्नाय के गंभीर अध्येता विद्वान होने के नाते उन्होंने जो सामग्री इस पुस्तिका में प्रस्तुत की है वह एक निष्ठावान श्रावक की दृष्टि से चिन्तनीय है। प्रतिमाओं की स्वच्छता की दृष्टि से जल द्वारा ही उनका अभिषेक किया जाना उचित है।

नारी विरुद्ध जो व्यवस्थाएं हैं उनमें वर्तमान परिस्थिति के अनुसार यथोचित सुधार किया जाना अपेक्षित और अभीष्ट है। सामाजिक व्यवस्था में स्वयमेव बहुत परिवर्तन आ गया है जैसा कि स्त्री बारात में भी शामिल होती है, श्मशान घाट भी जाती है और भाई न होने पर स्वयं दाह संस्कार भी करती है। कानून के अनुसार अब पिता के साथ माता का भी नामांकन किया जाता है। अब स्त्री परतंत्र भी नहीं होती, पुत्री उचित शिक्षा प्राप्त कर आत्मनिर्भर हो जाती है और विवाह के बाद पति–पत्नी की स्थिति साथी और साझी की हो जाती है। जिन मंदिरों में स्त्री प्रवेश का निषेध था उनमें स्त्री प्रवेश के लिए आन्दोलन हुये हैं और कानून द्वारा उसका समर्थन किया गया है। अतः आधुनिक परिवेष को देखते हुये दिगम्बर जैन मूल संघ के अनुयायियों को भी स्त्री के सम्बन्ध में सोच का परिष्कार करना चाहिए। डॉ. बंसल से हमारा अनुरोध है कि वे इस सम्बन्ध में पुनर्विचार करने की ओर भी ध्यान दें।

उपरोक्त दोनों पुस्तकें "समन्वय वाणी जिनागम शोध संस्थान", 129, जादोन नगर 'बी', दुर्गापुरा, जयपुर–302018 (मो. 9929655786) से क्रमशः 11 नवम्बर 2015 और 1 मार्च 2016 को प्रकाशित हुईं।

महावीर का अन्तर्बोध : ले. श्री दुलीचंद जैन; प्र. रिसर्च फाउण्डेशन फार जैनॉलॉजी, सुगन हाउस, 18, रामानुजा अइय्यर स्ट्रीट, साहूकार पेठ, चेन्नई–600079; अगस्त 2015; पृ. 181+12; मूल्य रु. 50/–

यह पुस्तक हिन्दी और अंग्रेजी में द्विभाषी है। अंग्रेजी में इसका नाम Wisdom of Mahaveer है। इसमें साहित्य–रत्न श्री दुलीचंद जैन ने **उत्तराध्ययन सूत्र** की सूक्तियों का संकलन हिन्दी व अंग्रेजी भाषा में अनुवाद के साथ किया है। यह मान्यता है कि **उत्तराध्ययन सूत्र** में भगवान महावीर के अंतिम उपदेश समाहित हैं, जो एक प्रकार से उनके उपदेशों का सारांश है।

इस संकलन में जो सूत्र दिये गये हैं और जिस प्रकार उनका हिन्दी और अग्रेजी में अनुवाद दिया गया है वह भगवान महावीर के उपदेशों को सहज रूप में समझने में उपयोगी होगा। इसमें **उत्तराध्ययन सूत्र** से दृष्टांत और कथाएं भी संकलित की गई हैं जो पाठक की अभिरुचि को प्रेरित करेंगी।

श्री दुलीचंद जी इस वर्ष 1 नवम्बर को सहस्रचंद्र–दर्शन कर लेंगे, इसके लिए हमारा हार्दिक अभिनंदन!

भगवान ऋषभदेव काव्य शतक एवं भजन संग्रह : लेखिका सौ. त्रिशला जैन, प्र. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर (जि. मेरठ); 17 फरवरी 2016; पृ. 80; मूल्य रु. 24/–

सौ. त्रिशला जैन के 39 भजन और काव्य रचनाएं इसमें संकलित हैं। लेखिका गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माता जी की छोटी बहन हैं और वे सन 1978 से ही कुछ न कुछ लिखती रही हैं।

प्रस्तुत संकलन भगवान ऋषभदेव को विशेष रूप से समर्पित है। दिनांक 17 फरवरी 2016 को सिद्धक्षेत्र मांगीतुंगी में अखण्ड पाषाण से बनी विश्व की सबसे ऊंची 108 फुट की भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा के अन्तर्राष्ट्रीय पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं महामस्तकाभिषेक के अवसर पर इसका लोकार्पण किया गया। इसमें प्रस्तुत 'ऋषभ वंदना' **शोधादर्श** के इसी अंक में प्रकाशित है।

निर्दोष श्रमणोपचार : ले. व प्र. डॉ. चंचलमल चौरड़िया, चौरड़िया भवन, गोल बिल्डिंग रोड, जोधपुर–342003, पृ. 20

डॉ. चौरड़िया ने इस पुस्तिका में जैन श्रमण हेतु निर्दोष प्रभावशाली उपचार का निर्देश किया है। जो उपचार उन्होंने बताये हैं वे सामान्य गृहस्थ के लिए उपयोगी हैं। इस पुस्तिका से जन सामान्य के शरीर शुद्धि एवं सम्पोषण के ज्ञान में वृद्धि होगी। इस लाभकारी पुस्तिका को प्रस्तुत करने के लिए लेखक को साधुवाद।

खालसा नाटक : ले. व प्र. डॉ. किशोरीलाल व्यास 'नीलकंठ', फ्लैट नं. 6, ब्लॉक नं. 3, केन्द्रीय विहार, मियापुर, हैदराबाद–500049; मार्च 2013; पृ. 112; मूल्य रु. 150/–; (मो. 8463968586)

डॉ. किशोरीलाल व्यास ने नवम गुरु श्री तेगबहादुर के बलिदान तथा दसवें गुरु श्री गोविन्द सिंह जी द्वारा श्री खालसा पंथ के निर्माण के सम्बन्ध में 9 जुलाई 1979 को एक नाटक के रूप में इसे लिखा था। उस समय वे जोशीले युवक थे। उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, में बत्तीस वर्ष अध्यापन करने के बाद वे 2007 में सेवानिवृत्त हुए तदपि इस नाटक का प्रकाशन वे मार्च 2013 में ही कर सके।

भूमिका में लेखक ने औरंगजेब द्वारा हिन्दुओं पर किये गये अत्याचार का विवरण दिया है। गुरु तेगबहादुर का बलिदान 1675 ई. में हुआ था। उस समय उनके पुत्र गोविन्द सिंह की आयु मात्र 9 वर्ष की थी।

अपने पिता के बलिदान से बाल हृदय विशेष रूप से प्रभावित हुआ। गोविन्द सिंह ने आलमगीर औरंगजेब को उसके द्वारा किये जा रहे अमानुषिक अत्याचारों के सम्बन्ध में फारसी में दो पत्र भी लिखे थे जिनमें से एक जफ़रनामा के नाम से प्रसिद्ध है। अपने चार पुत्रों के बलिदान से गोविन्द सिंह ने हिम्मत नहीं हारी, और 12 अप्रैल 1699 को आनन्दपुर में वैशाखी के दिवस पर उन्होंने मुगलों से लड़ने के लिए **खालसा** का गठन किया। औरंगजेब का देहान्त 80 वर्ष की उम्र पाकर 1707 में हो गया था। उसके प्रायः एक वर्ष बाद ही 18 अक्टूबर 1708 को केवल 42 वर्ष की अल्पायु में गुरु गोविन्द सिंह का निधन हो गया। खालसा के माध्यम से उन्होंने हिन्दुओं में पुनर्जीवन का जो प्रयास किया था वह उनके बाद भी जीवन्त रहा।

यह नाटक रोचक भी है और ऐतिहासिक तथ्यों को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत भी करता है। इसमें गुरु गोविन्द सिंह के उपदेशों के सूत्र भी दिए गये हैं। इस नाटक की प्रस्तुति के लिए डॉ. व्यास अभिनन्दन के पात्र हैं।

जिनांजलि : ले. श्री राजेश जैन; प्र. नेशनल पब्लिसिंग हाउस, 2/35, अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली–110002; 2013; पृ. 97; मूल्य रु. 225/–

श्री राजेश जैन पेशे से वैज्ञानिक हैं और नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन में जनरल मैनेजर के पद से सेवानिवृत्त हैं, परन्तु प्रवृत्ति से वह एक साहित्यकार–कवि हैं। प्रस्तुत पुस्तक में मानतुंगाचार्य रचित **भक्तामर स्तोत्र** से प्रेरित जैन दर्शन की वैज्ञानिकता को साहित्यिक धरातल पर स्थापित करती हुई 48 कविताओं का संग्रह है। प्रत्येक श्लोक का हिन्दी में भावानुवाद दिया गया है और वैज्ञानिक धरातल पर मुक्त काव्य दिया गया है जो लेखक की मौलिक विचारणा से प्रसूत है। इलाहाबाद के सुधी पाठक श्री महेन्द्र राजा जैन के अनुसार जैन साहित्य जगत में यह अपने ढंग का पहला और अनूठा प्रयास कहा जा सकता है।

ब्रज कुमुदेश : पं. गंगारत्न पाण्डेय विशेषांक; जुलाई–दिसम्बर 2015; सं. श्री अशोक कुमार पाठक 'अशोक', ब्रजराज कुटी, 417/14, निवाजगंज, लखनऊ; पृ. 112; मूल्य 10/–

ब्रज कुमुदेश पत्रिका का यह अंक साहित्य मनीषी पं. गंगारत्न पाण्डेय को समर्पित है। श्री पाण्डेय का जन्म 27 अप्रैल 1918 को हुआ था और देहावसान 19 मई 2015 को 97 वर्ष आयु प्राप्त कर हो गया। पाण्डेय जी वरिष्ठ साहित्यकार थे। लखनऊ भी उनकी कर्मस्थली रही

थी। भारत के स्वतंत्रता संग्राम से भी वे सम्बद्ध रहे। लखनऊ में अंग्रेजी के प्राध्यापक के रूप में उन्होंने कान्यकुब्ज कॉलेज में 1952 से 1962 तक अध्यापन कार्य किया था। उसके बाद उनकी नियुक्ति दिल्ली में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय में हो गयी। वहां से 1977 में सेवानिवृत्त होने के पश्चात अपना स्थायी निवास उन्होंने लखनऊ में बनाया और अपना उपयोग साहित्य सृजन में लगाया।

पाण्डेय जी की कुछ विशिष्ट कृतियों का परिचय और समीक्षा इस अंक में संकलित हैं। पाण्डेय जी के मित्रों के अतिरिक्त उनके दोनों पुत्रों एवं पुत्री के श्रद्धा सुमन भी इसमें सम्मिलित हैं। पाण्डेय जी की दो कृतियों **–इतिहास के नैपथ्य में** और **निहारा पथ न आये तुम** का परिचय **शोधादर्श 76** में दिया गया है। विशेषांक के प्रकाशन में श्री सुरेश कुमार 'आवारा नवीन' का सहयोग भी विशिष्ट रहा।

आत्मकथा : ले. आगम मनीषी श्री त्रिलोकचंद जी जैन; प्र. श्री जैनागम नवनीत प्रकाशन समिति; राजकोट; 15–7–2015; पृ. 128; मूल्य रु. 20/–

पुस्तक में श्री त्रिलोकचंद जी द्वारा स्वलिखित आत्मकथा, उनके साहित्य के पाठकों के पत्र और उनके स्वयं के रचित भजन संकलित हैं। श्री त्रिलोकचंद जी का जन्म 19–12–1946 को छत्तीसगढ़ में रायपुर जिले के खीचन गांव में हुआ था। बाल्यकाल से ही उनकी धर्म ध्यान में अभिरुचि थी। 19 मई 1967 को प्रायः 20 वर्ष की अवस्था में उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली और धार्मिक साहित्य के लेखन में अपना उपयोग लगाया। 5 जनवरी 2011 को अचानक औपद्रविक पेट में तीव्र वेदना से एवं 6: महीनों में भी कोई उपचार न होने के कारण 12 जुलाई 2011 को उन्हें पुनः श्रावक जीवन स्वीकार करना पड़ा। तथापि जनवरी 2014 में स्वास्थ्य लाभ करने पर एवं पूरी हिम्मत आ जाने से आगम सम्बन्धी प्रकाशन का जो कार्य अवशेष था उसे पूरा किया। जनवरी 2016 से एक वर्ष की निवृत्ति युक्त संलेखना प्रारंभ की। पुनः फरवरी 2017 से दीक्षा संथारा लेने का उनका संकल्प है।

आत्मकथा में लेखक ने बहुत से प्रसंग दिये हैं जो उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। सामाजिक परिस्थितियों का भी उन प्रसंगों से ज्ञान होता है। विवरण रुचिकर शैली में दिया गया है जो ऐतिहासिक वृत्त के समान पढ़ने का आस्वादन कराता है। **शोधादर्श** पत्रिका के प्रति उनका अनुराग है। उन्होंने अपनी **आत्मकथा** की पुस्तक भेजने का अनुग्रह किया जिसके लिए हम आभारी हैं।

जैनागमों में संलेखना, संथारा : ले. श्री विमल कुमार नवलखा; सं. आगम मनीषी त्रिलोकचंद जी जैन; प्र. श्री विमल कुमार नवलखा, नवलखा टैक्सटाइल्स ट्रेडर्स, पो. पिपोदरा, टैम्पा गली, किम चार रास्ता के पास, त. मंगलौर, जि. सूरत (गुज)– 394110; 30–9–2015; पृ. 64

यह पुस्तक **शोधादर्श 82** में हमारे लेख ***संथारा* पर हंगामा** के संदर्भ से श्री त्रिलोकचंद जी ने भेजी है जिसके लिए हम आभारी हैं। इस पुस्तक में श्वेताम्बर आगम सूत्रों से संलेखना के विषय में उद्धरणों का संकलन किया गया है। इससे यह विदित होता है कि संथारा का प्रचलन श्वेताम्बर परम्परा के स्थानकवासी सम्प्रदाय में विशेष रूप से है। धार्मिक दृष्टि से संथारा के सम्बन्ध में ऐसी ही विवेचना जैन धर्म के सभी सम्प्रदायों के पत्र–पत्रिकाओं में की जाती रही है। तथापि इससे संलेखना और संथारा के समीकरण पर जिज्ञासा का समाधान नहीं होता। श्री त्रिलोकचंद जी ने स्वयं भी स्वीकार किया है कि संथारा शब्द कब प्रचलित हुआ था या व्यवहार में प्रारंभ से ही संथारा कहा जाता रहा, यह खोज का विषय है।

अभिनन्दन ग्रन्थ (श्री सुरेश कुमार 'आवारा नवीन'); सं. डॉ. रश्मिशील शुक्ला; प्र. नमन प्रकाशन, चिंट्ल्स हाउस, स्टेशन रोड, लखनऊ; 2016; पृ. सं. 136+18; मूल्य रु. 200/–

साहित्य सेवी श्री सुरेश कुमार 'आवारा नवीन' की षष्ठिपूर्ति के अवसर पर 13 जून 2016 को यह अभिनंदन ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। श्री 'आवारा नवीन' के संघर्षमय जीवन का परिचय अनके साथी साहित्य सेवियों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। साथ ही उनके साहित्य प्रेम व रचना–धर्मिता का भी सम्यक् रूप से आलेखन किया गया है। कवि की कुछ रचनाएं भी दी गई हैं। उनके अपने शब्दों में – 'ऐसी अपनी राम कहानी। सांस–सांस में दर्द भरा है, और नयन में खारा पानी!' 'आवारा नवीन' जी से हमारा सम्पर्क विगत 20वर्षो से रहा है। उनकी सहज आत्मीयता और सहयोग करने की भावना ने हमारे सम्पर्क को विशेष स्नेहपूर्ण बनाया। इस अवसर पर उनके लिए हमारा शुभाशीष है कि वह अपने साहित्यिक प्रयास में निरंतर सफल रहें।

– डॉ. शशि कान्त

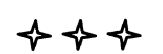

आभार

श्री महेश नारायण सक्सेना, लखनऊ, ने अपने पूज्य स्वर्गीय माता–पिता की पुनीत स्मृति में रु. 1000/– और बड़ी बहन स्व. ओमवती सक्सेना की पुनीत स्मृति में रु. 500/– भेंट किये।

डॉ. शशि कान्त और **सौ. मंजरी जैन** ने अपनी द्वितीय प्रपौत्री के शुभागमन पर रु. 500/– भेंट किये। उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री शिरीष कान्त एवं पुत्रवधु सौ. रागिनी जैन के कनिष्ठ पुत्र चि. मलय एवं पुत्रवधु सौ. संचिता जैन को 26 फरवरी 2016 को कन्या रत्न की प्राप्ति हुई।

श्रीमती सरिता अग्रवाल, कोलकाता, ने अपनी सास श्रीमती शिवा कुमारी अग्रवाल की पुनीत स्मृति में रु. 500/– भेंट किये।

श्री सचिन जैन, बड़ौत, ने रु. 440/– भेंट किये।

श्री आदेश जैन, लखनऊ, ने रु. 101/– भेंट किये।

श्री किशोरीलाल गुप्ता, लखनऊ, ने रु. 101/– भेंट किये।

श्री कैलाश नारायण टण्डन, कानपुर, ने अपनी पत्नी श्रीमती शकुन्तला टंडन की पुनीत स्मृति में रु. 50/– भेंट किये।

अभिनन्दन

4 जनवरी को कोलकाता में **जैन जर्नल** के सम्पादक, वरिष्ठ विद्वान, **डॉ. सत्यरंजन बनर्जी** को बाहुबलि प्राकृत विद्यापीठ, श्रवणबेलगोला द्वारा, **प्राकृत ज्ञान भारती अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार–2014** से सम्मानित किया गया और रु. दो लाख की राशि भेंट की गई।

22 जनवरी को संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति बरॉक ओबामा द्वारा भारतीय मूल के अमेरिकी वैज्ञानिक **डॉ. राकेश के. जैन** को **नेशनल मेडल आफ साइंस** से सम्मानित किया गया। डॉ. जैन आई. आई.टी. कानपुर के पूर्व छात्र रह चुके हैं। इस समय वह हार्वर्ड मेडिकल कॉलेज में मेसाचूसैट्स जनरल अस्पताल में ट्यूमर बाईलॉजी के प्रोफेसर हैं। ट्यूमर माइक्रो एनवरेन्मेंट की फील्ड में उनको अग्रणी माना जाता है।

11 मार्च को वरिष्ठ साहित्यकार **श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश'** को लखनऊ में चेतना साहित्य परिषद द्वारा **'चेतना गौरव'** अलंकरण से सम्मानित किया गया।

12 अप्रैल को दिल्ली में भारत के राष्ट्रपति द्वारा टाइम्स आफ इण्डिया ग्रुप की अधिष्ठात्री **श्रीमती इन्दु जैन** को **पद्मभूषण** अलंकरण से सम्मानित किया गया।

13 जून को **श्री सुरेश कुमार 'आवारा नवीन'** का साहित्य के प्रति उनके अनुराग की भावना का सम्मान करते हुए, षष्ठिपूर्ति के अवसर पर सार्वजनिक अभिनंदन किया गया और **अभिनंदन ग्रंथ** भेंट किया गया।

***शोधादर्श* का समस्त परिवार और तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति उपरोक्त सभी महानुभावों का उनकी यश–वृद्धि के लिए हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।**

शोक संवेदन

6 जनवरी को मुम्बई में हमारी समिति के आजीवन सदस्य 95–वर्षीय **श्री कैलाश चंद जैन** का निधन हो गया।

22 जनवरी को लखनऊ में 94–वर्षीय सुश्रावक **श्री प्रेमचंद जैन** का निधन हो गया।

24 जनवरी को लखनऊ में ही हमारी समिति के आजीवन सदस्य 85–वर्षीय **श्री धनेन्द्र कुमार जैन** का निधन हो गया।

9 फरवरी को आरा में श्री सरत कुमार जैन की माता जी सुश्राविका 85–वर्षीय **श्रीमती हेमा जैन** का शांति पूर्वक शरीर शांत हो गया।

25 फरवरी को नागपुर में जैन दर्शन के मर्मज्ञ, 86–वर्षीय, **पं. मनोहर मारवडकर** का निधन हो गया।

15 मार्च को वाराणसी में भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के वरेण्य विद्वान 94–वर्षीय इतिहास–मनीषी **डॉ. नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी** ब्रह्मलीन हो गये।

24 मार्च को कोलकाता में श्रीमती सरिता अग्रवाल की सास 87–वर्षीया **श्रीमती शिवा कुमारी अग्रवाल** का निधन हो गया।

21 मई को मुम्बई में हमारी समिति के उपाध्यक्ष 77–वर्षीय **श्री महेन्द्र प्रसाद जैन** का निधन हो गया।

28 जून को दिल्ली में **शोधादर्श** के सुधी पाठक 85–वर्षीय **श्री श्रीनारायण अग्रवाल** का शरीर शांत हो गया।

30 जून को सतना में 87–वर्षीया सुश्राविका **श्रीमती शांति बाई जैन** (स्व. नीरज जैन की पत्नी) का निधन हो गया।

उपरोक्त सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति *शोधादर्श* परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित है और शोक से संतप्त परिवारों के प्रति हार्दिक संवेदना निवेदित है। — नलिन कान्त जैन

पाठकों के पत्र

डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव, भिलाई

शोधादर्श 82 में सम्पादकीय अत्यंत सुन्दर, सार्थक एवं समीचीन है। **शोधादर्श** के उत्कृष्ट सम्पादन का प्रमाण है अहिंसा इण्टरनेशनल अभिनन्दन समारोह 2015 में सुयोग्य सम्पादक श्री नलिन कान्त जैन को पत्रकारिता पुरस्कार से सम्मानित किया जाना। इस महनीय सम्मान के लिए उन्हें भूरि–भूरि बधाई! प्रस्तुत अंक के सभी लेख शोधपरक एवं प्रशंसनीय हैं। श्री मगनलाल जैन का आलेख 'एक निष्ठावान श्रावक का भाव–चिन्तन' मुझे अत्यंत विचारोत्तेजक लगा। उसका एक–एक वाक्य मंथनीय और सुधारपरक है। यह भाव–चिन्तन सच्चे जैन ही नहीं अपितु समाज के हर व्यक्ति के लिए चिन्तनीय एवं अनुकरणीय है।

पत्रिका का पेज 28 खोलते ही मन इसलिए प्रसन्न हो गया क्योंकि **शोधादर्श** में अब अंग्रेजी लेखों में डायाक्रिटिकल मार्क्स का भी शुभारंभ हो गया है। विदुषी कु. पीनल जैन द्वारा अपने लेख Jain Inscriptions of the Chalukya में डायक्रिटिकल मार्क्स लगाने हेतु बधाई। एक सुझाव भी–चूंकि लेख में चालुक्यों की एक से अधिक शाखाओं का उल्लेख किया गया है, इसलिए शीर्षक में Chalukya के स्थान पर Chalukyas होना चाहिए था।

डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल (अमलाई) ने **शोधादर्श–80** में प्रकाशित मेरे लेख 'आचार्य तुलसी की अनुपम देन – अणुव्रत' की प्रशंसा की, अस्तु उनके प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूं।

डॉ. उषा माथुर, लखनऊ

अहिंसा इण्टरनेशनल अवार्ड समारोह में श्री नलिन का सम्मान हुआ, पढ़कर बहुत अच्छा लगा, बधाई।

कुछ वर्ष पूर्व भारतीय हिन्दी परिषद की कांफ्रेस में औरंगाबाद जाना हुआ था। वहां अजन्ता की गुफाओं के भित्ति चित्रों में जैन तीर्थंकरों के भित्ति चित्र तथा बौद्ध धर्म सम्बन्धी भित्ति चित्र देखे। एलोरा की गुफाओं में बौद्ध और जैन तीर्थंकरों की विभिन्न मुद्राओं में मूर्तियां देखीं। इससे पता चलता है कि किसी समय बौद्ध और जैन धर्म का प्रचार–प्रसार अपने चरम पर था।

राजीव कान्त की 'देह के मकान में' दार्शनिक भाव वाली कविता, अतुकान्त और तुकान्त मिश्रित, पढ़ी। वास्तव में, मनुष्य सांसारिकता में भटकता रहता है। जीवन के अंतिम समय में उसे ज्ञान प्राप्त होता है, तब तक बहुत देर हो चुकी होती है, आदमी अपना अर्जित ज्ञान संसार को पूरी तरह नहीं दे सकता।

श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध', लखनऊ

श्री राजीव कान्त जैन का गीत ''मैं देह के मकान में'' और श्री अमर नाथ का गीत ''मैंने अमृत पी लिया है'' रचनायें अच्छी व सार तत्व संयुक्त हैं। श्री मगनलाल के लेख ''एक निष्ठावान श्रावक का भाव चिंतन'' के साथ स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, श्री अजित प्रसाद जैन, व श्री रमा कान्त जैन के लेख अनेकानेक उद्धरणों से संयुक्त हैं। इनका प्रकाशन दिवंगत आत्माओं के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है। सम्पादक श्री नलिन कान्त जैन को सम्मान हेतु बधाई!

श्री बी.डी. अग्रवाल, राजेन्द्र नगर, लखनऊ

स्वनामधन्य डॉ. ज्योति प्रसाद जैन व रमा कान्त जैन जैसे पुराने विद्वानों के विद्वत्तापूर्ण लेख जानकारी से भरपूर हैं, वे आज भी प्रासंगिक हैं। प्रो. प्रकाश चंद्र जैन का श्री कुन्दकुन्द स्वामी की जन्मभूमि से सम्बन्धित लेख वास्तव में रुचिकर है। कु. पीनल जैन का चालुक्यों के शिलालेखों से सम्बन्धित लेख श्रमसाध्य है। वे एक उत्तम एम.फिल. साबित होंगी ऐसी आशा है। श्री मगन लाल जैन ने अपनी भावनाओं को वास्तविकता के आधार पर व्यक्त किया है। उन्हें साधुवाद!

श्री महेश नारायण सक्सेना, लखनऊ

अहिंसा इन्टरनेशनल द्वारा 6 दिसम्बर 2015 को श्री नलिन कान्त जी को **'शोधादर्श'** जैसी अमूल्य पत्रिका का सम्पादन करने के लिए 'पत्रकारिता पुरस्कार से सम्मानित किया गया, यह सूचना पाकर मुझे अतीव प्रसन्नता हुई। मेरी ओर से उन्हें हार्दिक बधाई व शुभ कामनाएं! इस प्रसंग में **शोधादर्श 82** के प्रथम व अंतिम पृष्ठ पर अभिनन्दन समारोह के चित्र देखकर बड़ा हर्ष हुआ। इसके साथ ही पत्रिका के पृष्ठ 38–41 पर उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मोहिनी जैन की रिपोर्ट पढ़कर अहिंसा इन्टरनेशनल द्वारा जैन पत्रकारिता के सम्मान में समय–समय पर आयोजित अभिनन्दन समारोहों के विषय में जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

पत्रिका में हमारे प्रिय मित्र स्व. रमा कान्त जी का लेख 'अध्यात्म रसिक कविवर भगवतीदास' अत्यन्त शोधपूर्ण एवं ज्ञानवर्धक है। इसी प्रकार श्री राजीव कान्त जी की कविता ''मैं देह के मकान में' पढ़कर मन अभिभूत हो गया। अन्य समस्त लेख भी अति रुचिपूर्ण एवं ज्ञानवर्धक हैं।

शोधादर्श के आजीवन अभिदाता

1 श्री अवनीश गर्ग जैन एवं श्रीमती रेखा गर्ग, लखनऊ–226001
2 डॉ. आर. के. अग्रवाल, लखनऊ–226012
3 डॉ. (श्रीमती) इन्दु रस्तोगी, लखनऊ–226010
4 डॉ. एस.के. जैन, लखनऊ–226010
5 श्री कमल सिंह रामपुरिया, हावड़ा–711101
6 डॉ. (श्रीमती) कुसुम पटोरिया, नागपुर–440001
7 श्री के.एस. पुरोहित, गांधी नगर–382009
8 प्रो. के.डी. मिश्रीकोटकर, चांदुर बाजार–444704
9 श्री चक्रेश जैन, इन्दौर–452018
10 श्री ब्र. जयनिशान्त जैन, टीकमगढ़–472001
11 डॉ. जितेन्द्र बी. शाह, अहमदाबाद–380001
12 श्री प्रद्युम्नश्री महाराज (द्वारा श्री जितेन्द्र कापड़िया), अहमदाबाद–380007
13 श्री प्रवीन कुमार जैन, नई दिल्ली–110002
14 मुनिश्री प्रमाणसागरजी (द्वारा श्री संतोषकुमार जयकुमार),सागर–470002
15 श्री भरत कुमार मोदी, इन्दौर– 452001
16 श्री माणिक चन्द्र जैन लुहाड़िया, कुन्दकुन्द नगर, सोनागिर–475686
17 श्री रूप चन्द जैन कटारिया, नई दिल्ली–110001
18 श्री ललित सी. शाह, अहमदाबाद–380014
19 मुनिश्री विमलसागर जी (द्वारा डॉ. शैलेन्द्र हरण जी), उदयपुर–313001
20 श्री विवेक काला, जयपुर–302004
21 श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, गाजियाबाद–201010
22 श्री मुकेश जैन, एडवोकेट, मुजफ्फरनगर–251002
23 श्री वेद प्रकाश गर्ग, मुजफ्फरनगर–251002
24 श्री शान्तीलाल जैन बैनाड़ा, आगरा–282002
25 श्री श्रीकिशोर जैन एवं श्री शरद कुमार जैन, दिल्ली–110051
26 श्री ब्र. सन्दीप सरल, बीना–470113
27 श्री सुरेश चन्द्र जैन, मसूरी–248179
28 श्रीमती त्रिशला जैन शास्त्री, लखनऊ–226004

वर्ष 2016 का वार्षिक शुल्क प्रदायी पाठक

1 श्री अमर नाथ, लखनऊ
2 श्री अजित जैन 'जलज', टीकमगढ़
3 अपभ्रंश साहित्य एकेडेमी, जयपुर
4 श्री इन्द्र कुमार साटीया, हुबली (2020 तक)
5 डॉ. (श्रीमती) उषा जैन, बिजनौर (2018 तक)
6 श्री कैलाश नारायण टन्डन, कानपुर
7 श्री दुलीचंद जैन, चेन्नई
8 श्री धन कुमार जैन, लखनऊ
9 श्री पवन कुमार जैन, पुणे,
10 बी.एस.एम. (पी.जी.) कॉलेज, रुड़की
11 श्री मगन लाल जैन, लखनऊ (2019 तक)
12 श्री महेश नारायण सक्सेना, लखनऊ
13 श्री रतन चन्द्र गुप्ता, लखनऊ
14 श्री वीर कुमार दोशी, अकलुज (2017 तक)
15 श्री शांति प्रकाश जैन, मेरठ
16 श्री संजय किशोर अग्रवाल, मुरादाबाद
17 श्री सचिन जैन, बड़ौत
18 श्री हीरालाल जैन, जबलपुर